भर्तृहरि शतक त्रय

ॐ

योगिराज भर्तृहरि विरचित

नीति-श्रृंगार वैराग्य

शतक त्रय

(सरल हिन्दी टीका सहित)

*

टीकाकार :

डा. चमनलाल गौतम

पूर्व सम्पादक—जीवनयज्ञ और युग संस्कृति
रचयिता—मंत्र महाविज्ञान, तन्त्र महाविज्ञान, उपासना महा-
विज्ञान, मंत्रयोग, वैदिक मंत्र विद्या, ऊँकार सिद्धि, मंत्र
शक्ति से रोग निवारण- -विपत्ति निवारण-कामना
सिद्धि, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग इत्यादि

*

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर) बरेली (उ० प्र०)

दो शब्द

राजसी ठाठ-बाट में पले एवं कांचन-कामिनी युक्त ऐश्वर्य से सम्पन्न पृथिवीपति महाराज भर्तृहरि का नाम लोक प्रसिद्ध है। किम्बदन्ती है कि महाराज को अपनी परम प्रेयसी एवं महारानी का अनुचित व्यवहार देख कर जो घृणा उत्पन्न हुई, उसनेसंसार के सभी पदार्थों से वैराग्य का रूप धारण कर लिया, जिसके परिणाम स्वरूप महाराज भर्तृहरि अपने महान वैभव और बांधवों को छोड़ कर वन में चले गए और परम योगी गुरु गोरक्षनाथ की शरण प्राप्त कर ली।

इन्हीं महाराज भर्तहरि ने नीति, शृंगार और वैराग्य के नाम से पृथक्-पृथक् तीन शतकों की रचना की, जिनका गुण-ग्राही विद्वानों ने सहर्ष स्वागत किया। उनमें विषय वस्तु के अनु-रूप भावों का अविच्छिन्न रूप से ऐसा वर्णन हुआ है कि किसी भी एक शतक का पढ़ना प्रारम्भकरके उसे पूरा पढ़े बिना छोड़ने को मन नहीं चाहता। उनका यही आकर्षण रचनाओं की प्रसिद्धि का कारण बना और तब से आज पर्यन्त सर्व साधारण इन शतकों के लिए लालायित रहते हैं।

'नीति शतक' में सभी प्रकार की नीतियों का समावेश है। चारों आश्रम, विद्वान्, मूर्ख, सज्जन, दुष्ट, मित्र, शत्रु, स्त्री,बालक वृद्ध सभी के विषय में नीति का उपदेश भरा पड़ा है। कर्म और धैर्य की प्रशंसा में जो कुछ लिखा है, वह अध्ययन के योग्य है। जिन दृष्टान्तों और उदाहरणों का समावेश है, वे भी अत्यन्त महत्व के और मननीय हैं।

'श्रृंगार शतक' में स्त्रियों की देहयष्टि, कटाक्ष, हावभाव, सौन्दर्य आदि के विषय में चर्चा करते हुए गृहस्थ जनों के लिए स्त्री के बिना संसार को अंधकार से ढका हुआ बता कर उसका पुरुष के लिए आवश्यक होना स्वीकार किया है। परन्तु अन्त में उसकी निन्दा करते हुए उनके मोह-जाल से विरक्त होने वाले पुरुष की प्रशंसा की है।

'वैराग्य शतक' भी एक अनूठी वस्तु है।इसमें तृष्णा कीनिन्दा और सन्तोष की प्रशंसा करते हुए विषय-वासना के सर्वथा त्याग का उपदेश दिया गया है, जिससे मन में विवेक का उदय होकर सांसारिक भोगों के प्रति वैराग्य की उत्पत्ति होना स्वाभाविक है।

इस प्रकार महाराज भर्तृहरि के तीनों शतक सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनमें केवल शिक्षाही नहीं मनोरंजन का भी समावेश है। यदि मन में किसी प्रकार की अस्वस्थता या चंचलता हो तो इनके अध्ययन से शान्ति और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उक्त तीनों शतकों को एकत्र करके सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित प्रस्तुत किया गया है,जिससे कि पाठकों को एक ही ग्रन्थ में तीनों शतकों के अध्ययन का सुयोग प्राप्त हो सके।

—प्रकाशक

भर्तृहरि कृत शतक त्रय

नीति शतक

मंगलाचरण

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकसाराय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

सभी दिशाओं और भूत भविष्यत्, वर्तमानादि कालों में अनवच्छिन्न, अनन्त, चैतन्यमात्र मूर्ति वाले, अपने अनुभव से जानने योग्य, शान्त स्वरूप एवं तेजोमय परमात्मा को नमस्कार है ।१।

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥२॥

मैं सदा जिसका चिन्तन करता रहता हूँ, वह मुझसे विरक्त होकर अन्य पुरुष की कामना करती है, और वह अन्य पुरुष किसी अन्य स्त्री की कामना करता है तथा वह अन्य स्त्री मुझसे प्रीति करती है । अतएव मेरी स्त्री को, उस अन्य पुरुष को, मुझे चाहने वाली उस अन्य स्त्री को, मुझे और उस कामदेव को भी धिक्कार है ॥२॥

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ।।३।।

अज्ञानी पुरुष सरलता से प्रसन्न किया जा सकता है, ज्ञानी पुरुष का प्रसन्न करना उससे भी सुखसाध्य है। परन्तु जो न ज्ञानी है, न अज्ञानी, उसे ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता ।।३।।

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरेवक्त्रदंष्ट्रांतरात्
समुद्रमपि सन्तरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ।।४।।

मगर के दाढ़ों में दबी हुई मणि चाहे निकाली जा सके, चाहे उन्नत लहरों से उलझते हुए गहन समुद्र को तैर कर पार किया जा सके और चाहे क्रुद्ध हुए सर्प को पकड़ कर शिर पर धारण किया जा सके, परन्तु मूर्ख पुरुष के किसी वस्तु पर जमे हुए मन को वहाँ से हटाना कठिन ही है ।४।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ।।५।।

यत्न करने पर चाहे बालू से तेल निकाल लिया जाय, चाहे प्यासा मनुष्य मृगतृष्णा के जल से अपनी प्यास को बुझा ले और चाहे ढूँढने पर खरगोश का सींग भी मिल जाय, परन्तु किसी वस्तु पर टिके हुए मूर्ख मनुष्य के मन को उस वस्तु से हटाना असंभव है ।५।

व्यालं बालमृणाजतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छतिय:खलांपथिसतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभि:।।६।।

जो पुरुष अपने सुधामय वचनों के उपदेश से दुष्टों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करना चाहता है, वह मानों कमल की बाल मृणाल से हाथी को बाँधना, सरसों की पुष्प-पंखुड़ी से हीरे में छेद करना और खारी समुद्र के जल को मधु की बूँदों से मीठा करना चाहता है ।६।

स्वायत्तमेकांतगुणं विधात्रा विनिर्मितंछादनमज्ञतायाः ।
विशेषत:सर्वविदांसमाजे विभूषणंमौनमपण्डितानाम् ।।७।।

विधाता द्वारा निर्मित मौन में अनेक गुण हैं । इसे किसी से माँगने की आवश्यकता नहीं होती, जो चाहे इस स्वाधीन रहने वाली वस्तु को कार्य में ला सकता है । मूर्खता के लिए ढक्कन स्वरूप यह मौन विद्वत्समाज में मूर्खों के लिए आभूषण स्वरूप ही होता है ।७।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतम्
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।।८।।

जब मुझे किंचित् ज्ञान होने लगा तब मैं हाथी के समान मदोन्मत्त होकर अपने मन में सोचने लगा कि मैं सर्वज्ञ हूं। परन्तु जब ज्ञानीजनों के संग से कुछ यथार्थ ज्ञान हुआ, तब मेरा

वह गर्व ऐसे उतर गया, जैसे रोगी का ज्वर उतर जाता है, तभी मुझे अपने मूर्ख होने की प्रतीति हुई।८।

क्रमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते
न हि गणपति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् ॥९॥

जब क्रमियों से युक्त, लार से क्लिन्न, दुर्गन्धित, घृणित, रसहीन तथा माँसहीन मानव-अस्थि को कुत्ता प्रीतिपूर्वक चबाता हुआ पार्श्व में स्थित इन्द्र की भी शंका नहीं मानता तो इससे यही प्रकट होता है कि क्षुद्र जीव जिस वस्तु को ग्रहण कर लेता है उसके अवगुण को नहीं देखता।९।

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपपिशिरस्कः क्षितिधरं
महीधादुत्तुङ्गादवनिंमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥१०॥

गंगा भी स्वर्ग से पहले शिवजी के शिर पर, फिर वहाँ से हिमगिरि पर और वहाँ से पृथिवी पर गिर कर समुद्र में चली गई। इस प्रकार उसके नीचे गिरते चले जाने से यह सिद्ध होता है कि विवेक से भ्रष्ट हुए पुरुष भी ऐसी ही सैकड़ों अधोगतियों को प्राप्त होते हैं।१०।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदा दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहेश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषम्
सर्त्रस्यौषधमस्तिशास्त्रविहितंमूर्खस्यनास्त्यौषधम्॥११॥

अग्नि का निवारण जल से होता है । धूप का छत्र से, मदमत्त हाथी अंकुश से, बैल और गधा डंडे से तथा रोग का अनेक प्रकार की औषधियों से और विष का विविध मन्त्रादि के प्रयोगों से निवारण होता है । इस प्रकार शास्त्रों में सभी की औषधि बताई है, परन्तु मूर्खता के लिए कोई औषधि नहीं हो सकती ।११।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनःसाक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः।
तृणन्नखादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयंपरमंपशूनाम्।।१२।।

जो मनुष्य साहित्य, संगीत और कला से विहीन हैं वे पूँछ और सींग से रहित साक्षात् पशु ही हैं। परन्तु यह घास न खाकर जीवित रहते हैं, इसे पशुओं का परम सौभाग्य ही समझना चाहिए ।१२।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूतामनुष्यरूपेणमृगाश्चरन्ति ।।१३।।

जिनमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील और गुण का अभाव है, वे मृत्युलोक में पृथिवी पर भाररूप होकर मनुष्य रूप में मृग के समान विचरण करते हैं ।१३।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ।।१४।।

निर्जन पर्वतों पर वनचरों के साथ विचरण करना अच्छा है, परन्तु मूर्खों के साथ इन्द्र के भवन में रहना भी ठीक नहीं है।१४।

विद्वत्प्रशंसा

शास्त्रोपस्कृत शब्द सुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः।

तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य सुधियस्त्वर्थं विनापीश्वराः।
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षकाहिमणयो यैरर्घतःपातिताः ॥१५॥

शास्त्रों के श्रेष्ठ शब्दों से विभूषित वाणी एवं शिष्यों के उपदेश में उपयोगी वाक्यों वाले विख्यात कवियों का निर्धन रहकर जिस राज्य में निवास हो, वह उस राजा की अयोग्यता का सूचक है। क्योंकि विद्वान् कवि तो निर्धन होते हुए भी सर्वत्र पूजनीय और सर्व समर्थ होते हैं। रत्नों के मूल्य को यथार्थ से कम परखने वाला पारखी ही निन्दनीय हो सकता है, रत्न नहीं हो सकते।१५।

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा
ह्यर्थिभ्यःप्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धि पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधन विद्याख्यमन्तर्धनम्
येषां तान्प्रति मानुमुज्झत नृपाः कस्तैः सहस्पर्धते ॥१६॥

विद्या रूप गुप्त धन को चोर नहीं देख सकता और वह धन सदा श्रेय की ही वृद्धि करता है। याचकों को देने पर भी बढ़ता और प्रलय होने पर भी नष्ट नहीं होता। हे नृपगण ! उन महाकवियों के प्रति अभिमान न करो, उनसे स्पर्धा करने वाला ही कौन है ?।१६।

अधिगतपरमार्थान्पण्डितान्मावमस्था–
स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां
न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥१७॥

परमार्थ के ज्ञाता पंडितों का अपमान न करो, क्योंकि तृण के समान तुच्छ लक्ष्मी द्वारा उनका वशीभूत होना वैसे ही संभव

नहीं है, जैसे कि कमलनाल के तन्तु द्वारा नवीन मद के स्राव वाले और श्याम गण्डस्थल वाले हाथी को रोकना असम्भव है।१७।

अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्ध-जलभेदविधौप्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौसमर्थः ॥१८॥

यदि विधाता क्रुद्ध होजाय तो वह कमलिनी वन में विलास करते हुए हंस को भले ही रोक दे, परन्तु उसके दूध और जल को पृथक्-पृथक् कर देने वाले चतुराई युक्त गुण को कौन छीन सकता है ?।१८।

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्द्धजा
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥१९॥

केयूर और चन्द्रमा के समान उज्वल मोतियों के हार धारण करने, स्नान और उबटन करने तथा केशों में पुष्प धारण करने से भी ऐसी शोभा नहीं हो सकती, जैसी कि संस्कार युक्त अलंकृत वाणी से होती है। क्योंकि अलंकारों का तो नाश होजाता है, परन्तु वाणी रूपी अलंकार का जीवन-पर्यन्त नाश नहीं होता।१९।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनःपशुः ॥२०॥

विद्या ही मनुष्य का सुन्दर रूप और गुप्त धन है, विद्या ही भोग, यश और सुख को प्राप्त कराने वाली है, विद्या ही गुरुओं की भी गुरु है, विद्या ही विदेश-गमन में बन्धु स्वरूप होती है, विद्या ही परा देवता है और विद्या ही राजाओं के द्वारा भी पूजी जाती है, धन नहीं पूजा जाता। इसलिए विद्याविहीन मनुष्य पशु ही है।२०।

क्षान्तिश्चेत्कवचेनकिंकिमरिभिःक्रोधोऽस्ति चेद्देहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्योषधैः किं फलम् ।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्य यदि
व्रीडा चेत्किमु भूषणैःसुकविता यद्यपि राज्येन किम्॥२१॥

यदि क्षमा है तो कवच का क्या प्रयोजन ? यदि क्रोध है तो शत्रु की क्या आवश्यकता ? यदि जाति है तो अग्नि की क्या अपेक्षा ? यदि सुहृद् हैं तो दिव्य औषधियों का क्या लाभ ? यदि साथ में दुर्जन हो तो सर्प भी क्या है? यदि विद्या धन है तो अन्य धन किस काम का ? यदि लज्जा है तो आभूषणों से क्या होना है ? और यदि श्रेष्ठ कविता है तो राज्य भी क्या है ? ।२१।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धृष्टता
ये चैवं पुरुषाःकलासु कुशलास्तेष्वेव लोके स्थितिः॥२२॥

स्वजनों पर उदारता, परिजनों पर दया, दुर्जनों से शठता, साधुओं से प्रीति, राजपुरुषों से नीति, विद्वानों से सरलता,

शत्रुओं से शूरता, गुरुजनों से सहनशीलता, स्त्रियों से धृष्टता आदि लौकिक व्यवहार में कुशल पुरुषों से ही लोक की स्थिति है ।२२।

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम् ॥२३॥

सज्जनों की संगति जड़ता को दूर करती, वाणी को सत्य से भरती, मान की वृद्धि करती, पापों को नष्ट करती, चित्त को प्रसन्न करती और सब दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। कहो, वह मनुष्य के हितार्थ क्या नहीं करती ? ।२३।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति तेषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥२४॥

श्रेष्ठ कर्म वाले और सभी रसों में सिद्ध वे कवीश्वर ही सर्वजेता हैं, जिन्हें यश, काया, वृद्धावस्था और मृत्यु का भी भय नहीं है ।२४।

सूनुःसच्चरितःसती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः
स्निग्धं मित्रमवञ्चकःपरिजनो निःक्लेशलेशंमनः ।
आकारो रुचिरःस्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ सम्प्राप्यते देहिनाम् ॥२५॥

सच्चरित्र पुत्र, पतिव्रता पत्नी, प्रसन्नमुख स्वामी, स्नेही मित्र, अवंचक परिजन, क्लेश-रहित मन, रुचिर आकृति, स्थिर वैभव, विद्या से सुशोभित मुख यह सब परमात्मा की प्रसन्नता से ही शरीरधारियों को प्राप्त होते हैं ।२५।

प्राणाघातान्निवृत्तिःपरधनहरणे संयमः सत्यवाक्य
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावःपरेषाम्।
तृष्णास्त्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयःसर्व भूतानुकम्पा
सामान्यं सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेष पन्था।।२६।।

जीवों की हिंसा न करना, पराये धन को न हरना, सत्य बोलना, पर्वकाल में यथाशक्ति दान करना, युवतियों की कथा में मौन रहना, तृष्णा को तोड़ना, गुरुजनों के प्रति विनय भाव रखना, सब जीवों पर दया करना आदि सर्वशास्त्रों द्वारा बताया हुआ कल्याण का मार्ग है।२६।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरन्तिम मध्याः।
विघ्नै पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति।।२७।।

निम्न श्रेणी के पुरुष विघ्न-भय से कार्यारम्भ नहीं करते, मध्यम श्रेणी के पुरुष कार्यारम्भ कर देते और विघ्न होने पर मध्य में ही उसे छोड़ देते हैं, परन्तु उत्तम श्रेणी के पुरुष विघ्नों के कारण बार-बार संतप्त होने पर भी उसे नहीं छोड़ते, वरन् पूर्ण करके ही रहते हैं।२७।

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरं
त्वसन्तो नाभ्यर्थ्याःसुहृदपि न याच्यःकृशधनः।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्।।२८।।

श्रेष्ठ पुरुष न्याय-प्रिय होते हैं, वे घोर विपत्ति में भी अनुचित कार्य नहीं करते। दुष्ट पुरुष से या अल्पधन वाले सुहृद से

धन की याचना नहीं करते। प्राण भले ही चले जाँय परन्तु वे अपने गौरव का ह्रास नहीं होने देते, यह समझ में नहीं आता कि तलवार की धार पर चलने के समान यह कठोर व्रत उन्हें किसने सिखाया है ? ।२८।

मानशौर्य प्रशंसा

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपिकष्टां दशा-
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्र विभिन्नकुम्भपिशितग्रासैक बद्धस्पृहः
किंजीर्णतृणमत्तिमानमहतामग्रेसरः केसरी ।।२९।।

क्षुधा से कृश शरीर, शिथिलप्रायः जरावस्था के कारण बलहीन और कष्टमय दशा को प्राप्त हुआ सिंह तेज-रहित होने पर भी मत्त गजेन्द्र के मस्तक का भक्षण करने की इच्छा रख कर कभी शुष्क और जीर्ण घास को खा सकता है ? ।२९।

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मां समप्यस्थिकं
श्वालब्ध्वा परितोषमेति न च तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं
सर्वः कृच्छ्रगतोपि वाञ्छतिजन सत्वाप्ररूपंफलम् ।।३०।।

स्वल्प स्नायु, चर्बी आदि तथा मांस-रहित अस्थि को प्राप्त करके प्रसन्न तो होता है, परन्तु उससे उसकी भूख शान्त नहीं हो सकती। सिंह भी पास आये हुए स्यार को छोड़ कर हाथी का ही वध करता है। इस प्रकार कष्टमय दशा को प्राप्त होकर भी सब जीव अपनी शक्ति के अनुसार ही फल प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं ।३०।

लांगूलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य बदनोदरदर्शनञ्च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भङ्क्ते ॥३१॥

कुत्ता भोजनदाता के आगे पूँछ हिलाकर और भूमि पर लोट-पोट होकर अपनी दीनता प्रदर्शित करता है, परन्तु हाथी अपने भोजनदाता को गंभीरता से देख कर सैकड़ों बार मनाने पर ही भोजन करता है ।३१।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥३२॥

इस परिवर्तनशील संसार में मरण को कौन नहीं प्राप्त होता और कौन नहीं जन्म लेता ? परन्तु जिसके द्वारा वंश की वृद्धि हो, उसी का जन्म लेना सार्थक है ।३२।

कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशार्येत वनेऽथवा ॥३३॥

पुष्पों के गुच्छे के समान मनस्वी पुरुषों की दो गतियाँ ही हैं—सब के शिर पर प्रतिष्ठित होना अथवा वन में ही मुर्झा कर नष्ट होजाना है ।३३।

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ।
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषाकृतिः॥३४॥

आकाश में बृहस्पति और उसके समान तेजस्वी पाँच, छः ग्रह और भी हैं, परन्तु अपने विशेष पराक्रम में रुचि रखने वाला

शिरमात्र शेष राहु उनसे वैर न करके परम तेजस्वी सूर्य चन्द्र को ही (क्रमशः) पूर्णिमा और अमावस के समय ग्रास करता है ।३४।

वहति भुवनश्रेणिं शेषः फणाफलकस्थितां
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स विधार्यते ।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥३५॥

शेष नाग अपने फण पर ही चौदह भुवनों को धारण किये रहते हैं, परन्तु कच्छप ने उन शेष नाग को भी अपनी पीठ पर धारण कर रखा है। वह कच्छप भी समुद्र की गोद में अनादर पूर्वक धारण किया हुआ है। अहो ! महान् पुरुषों के चरित्र की महिमा भो असीमित होती है ।३५।

वरं प्राणोच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः ।
तुषाराद्रेः सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ॥३६॥

अग्नि की असह्य ज्वाला वाले वज्र के इन्द्र द्वारा प्रहार करने से हिमालय के पुत्र मैनाक के परों का काटना अच्छा था, परन्तु यह अच्छा नहीं था कि उसने अपने पिता को संकट ग्रस्त छोड़ कर समुद्र के आश्रय में अपनी प्राण-रक्षा की ।३६।

यदचेतनोऽपिपादैस्पृष्टःप्रज्वलति सवितुरिनकान्तः ।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ॥३७॥

सूर्यकान्त मणि अचेतन होने पर सूर्य की रश्मियों के ताप से प्रज्वलित होजाती है तो सचेतन तेजस्वी पुरुष दूसरों के द्वारा किये जाने वाले निरादर को कैसे सहन कर सकता है ? ।३७।

सिंहःशिशुरपिनिपततिमदमलिनकपोलभित्तिषुगजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्ववतां न खलु वयस्तेजसां हेतुः ॥३८॥

सिंह का शिशु भी मदोन्मत्त हाथी पर आक्रमण कर देता है, क्योंकि शक्तिशालियों का स्वभाव ही ऐसा होता है । तेजस्विता को प्रदर्शित करने में वय बाधा का कारण कदापि नहीं बन सकती ।३८।

द्रव्य प्रशंसा

जातिर्यातु रसातलं गुण गणस्तत्राप्यधो गच्छतात्
शालं शैलतटात्पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन बिनागुणास्तृणलवप्रायाः समस्ताइमे ॥३९॥

जाति चाहे रसातल में क्यों न चली जाय, श्रेष्ठ गुणगण भी अधोगामी क्यों न होजाँय, शीलता पर्वत से शिला के पतित होने के समान क्यों न गिर जाय, परिवारीजन अग्नि में क्यों न भस्म होजाँय, शत्रुरूपी शूरता पर वज्रपात क्यों न होजाय, परन्तु हमें तो धन से ही प्रयोजन है, क्योंकि धन के बिना सभी गुण तृण के तुल्य ही हैं ।३९।

तानोन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥४०॥

वही इन्द्रियाँ हैं, वही नाम है, वही अकुंठित बुद्धि है, वही वाणी है, फिर भी कैसी अद्भुत बात है कि धन के बिना मनुष्य क्षणभर में ही कुछ का कुछ होजाता है ।४०।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥४१॥

जिसके पास धन है, वही पुरुष कुलीन है, वही पण्डित है, वही विद्वान् और गुणज्ञ है, वही वक्ता और वही दर्शनीय है। अभिप्राय यह है कि सभी गुण स्वर्णरूपी धन के आश्रित हैं।४१।

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिविनश्यतियतिःसङ्गात्सुतोलालनाद्
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यादानवेक्षणादपिकृषि :स्नेहः प्रवासाश्रया-
न्मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम्॥४२॥

बुरे मन्त्रियों से राजा का, कुसंगति से योगी पुरुष का, लाड़ से पुत्र का, अध्ययन न करने से ब्राह्मण का, कुपुत्र से कुल का और खलों की सेवा से शील का नाश होजाता है।४२।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।४३।

धन की तीन गति हैं—दान, भोग और नाश। धन का दान या भोग न किया जाय तो उसकी तीसरी गति ही हुआ करती है।४३।

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषुजना ॥४४॥

शान पर खराद किया हुआ मणि, शस्त्रों से आहत समर-विजयी, मद का स्राव करता हुआ हाथी, शरद ऋतु में किंचित् सूखी हुई नदी, कला से शेष चन्द्रमा, कामकेलि में मर्दिता बालवनिता और शुभकर्म में व्यय करके निर्धन हुआ राजा, इनकी शोभा कृशता में भी होती है ।४४।

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवांना प्रसृतये
स पश्चात्सम्पूर्णो गणयति धरित्रीं तृणसमाम्।
अतश्चानैकान्त्याद् गुरुलघुतयार्थेषु धनिना--
मवस्था वस्तूनिप्रथयतिचसङ्कोचयति च ॥४५॥

दरिद्र रहने पर जो मनुष्य एक अंजुली मात्र जौ की कामना करता है, वही धनवान होने पर सम्पूर्ण पृथिवी को तृण के समान समझता है। इस प्रकार यह दोनों अवस्थाएँ मनुष्यों को छोटा या बड़ा बना देतीं और वस्तुओं का विस्तार और संकोच किया करती हैं ॥४५॥

राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुम्पुषाण ।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपुष्यमाणे
नानाफलं फलति कल्पलतेव भूमिः ॥४६॥

हे राजन् ! यदि पृथिवी रूपी गाय का दोहन करना हो तो प्रजा का पालन बछड़े के समान करो । क्योंकि भले प्रकार पालन की हुई पृथिवी कल्पवृक्ष के समान फल देने वाली होती है ।४६।

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ।

नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥४७॥

कहीं सत्य, कहीं झूँठ, कहीं कठोर, कहीं मधुर बोलने वाली, कहीं घातक, कहीं दयालु, कहीं कृपण, कहीं उदार, कहीं प्रचुर धन का व्यय करने वाली और कहीं अधिक धन-संचय करने वाली यह राजनीति वेश्या के समान अनेक रूप वाली होती है ।४७।

विद्या कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां
दानं भोगो मित्रसंरक्षणञ्च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥४८॥

विद्या, कीर्ति, ब्राह्मणों का पालन, दान देना, भोग करना और मित्र की रक्षा, जिसमें यह छः गुण नहीं, उस राजा के आश्रय से क्या लाभ है ? ।४८।

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोतिमरुस्थलेऽपिनितरां मेरौततोनाधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्ति वृथामाकृथा
कूपेपश्य पयोनिधीवविघटो गृह्णाति तुल्य जलम्॥४९॥

विधाता ने भाग्य में अल्प या अधिक जितना भी धन लिखा है, वह तो उसे मरुस्थल में भी प्राप्त होता ही है और उससे अधिक सुमेरु पर्वत पर जाने से भी नहीं मिल सकता । इसलिए धैर्य पूर्वक जो है उसी पर सन्तोष करो और किसी धनवान के समक्ष दीनता व्यक्त न करो । देखो, घड़े को कूप में डालो या समुद्र में, जल तो एक समान ही भरेगा ।४९।

त्वमेव चायकाधारोऽसीति केषां न गोचरः ।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्ति पृतीक्षसे ॥५०॥

हे मेघवर ! यह किसे ज्ञात नहीं कि हम पपीहों के आधार तुम्हीं हो, तो फिर तुम हमारे दीनता भरे शब्दों की ही प्रतीक्षा क्यों करते हो ? ।५०।

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवोहि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधांगर्जन्तिकेचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनंवचः॥५१॥

अरे पपीहा ! सावधान मन से मेरा वचन सुन । आकाश में अनेक मेघ हैं,परन्तु सभी समान नहीं हैं। उनमें से कुछ तो जल की वर्षा करके पृथिवी की तृप्ति करते हैं और कुछ वृथा ही गर्जन करते रहते हैं । इसलिए तू जिस-जिस को देखे उस-उस के समक्ष ही दीन वचनों को न बोला कर ।३१।

अकरुणत्वमकारणविग्रहः
परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥५२॥

करुणाहीनता, अकारण विग्रह, परधन और परनारी की कामना, स्वजनों और मित्रों के प्रति असहिष्णुता, दुरात्माओं के यह स्वभाव सिद्ध लक्षण हैं ।५२।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥५३॥

दुर्जन विद्यावान है तो भी त्याग देने योग्य है। क्या कोई मणि से अलंकृत हुए सर्प में भयंकरता नहीं होती।५३।

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौदम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतितादैन्यं प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तव्यशक्तिः स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः॥५४॥

लज्जावानों में जड़ता, व्रत करने वालों में दम्भ पवित्र चित्त वालों में कपट वीरों में दयाहीनता, मुनियों में बुद्धि राहित्य, मधुर भाषियों में दैन्य, तेजस्वियों में अवलिप्तता, वक्ताओं में मुखरता और स्थिर चित्त वालों में आलस्य का होना कह कर दुर्जन पुरुष गुणियों में ऐसा कौन-सा गुण है जिसमें दोष न निकालते हों।५४।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेनकिम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किंमण्डनैः
सद्विद्यायदिकिं धनैरपयशो यद्यस्तिकिं मृत्युना ॥५५॥

लोभ है तो किसी अन्य दुर्गुण की क्या आवश्यकता ? यदि पिशुनता है तो पापों का क्या प्रयोजन ? यदि सत्य है तो तप से क्या लाभ ? यदि मन में पवित्रता है तो तीर्थों में जाने का क्या उद्देश्य ? यदि सौजन्य है तो अन्य गुणों से क्या कार्य ? यदि यश है तो अन्य भूषण से क्या अपेक्षा ? यदि सद्विद्या है तो धन का क्या अभिप्राय ? यदि अपयश है तो मृत्यु की क्या कामना ?।५५।

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे॥५६॥

दिन का धूमिल चन्द्र, यौवनहीना नारी, कमलविहीन सरोवर, बुद्धिहीन सुन्दर पुरुष, कृपण स्वामी, दुर्गति-ग्रस्त सज्जन और राजभवन में दुष्ट मनुष्य का वास, यह सातों काँटे के समान हैं ।५६।

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥५७॥

अत्यन्त क्रोधी राजाओं का आत्मीय कोई नहीं होता। क्योंकि अग्नि आहुति देने वाले को भी स्पर्श करने पर दग्ध कर देती है ।५७।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा
धृष्टः पार्श्व वसति च सदा परतश्चाप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहतेप्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५८॥

यदि सेवक मौन रहे तो गूँगा, वाक्पटु हो तो बकवादी, समीप रहे तो ढीठ और दूर रहे तो मूर्ख कहलाता है। यदि क्षमाशील हो तो उसे भीरु और असहनशील हो तो कुलहीन कहते हैं। अभिप्राय यह है कि सेवा धर्म अत्यन्त गहन है, जो कि योगियों को भी अगम्य होता है ।५८।

उद्भासिताखिलखलस्यविशृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्मृतनिजाधर्मकर्मवृत्तेः ।
दैवा वाप्तनिभवस्थ गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यते कैः ॥५९॥

जिस की दुष्टता का ज्ञान सभी को होगया हो, जिसके पूर्वजन्म के नीचकर्म इस जन्म में प्रकट हो रहे हों, जो दैव-वशात् धनवान होगया हो और जिसे श्रेष्ठ गुणों से द्वेष हो, ऐसे दुष्ट मनुष्य के सामने जाकर कौन सुख प्राप्त कर सकता है ।५९।

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वीपुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्रीखलसज्जनानाम् ॥६०॥

जैसे दिवस के प्रारम्भ में घनी छाया रहती है और धीरे-धीरे घटती जाती है, फिर दिवस के उत्तरार्ध के अन्त में छाया स्वल्प रहती और धीरे-धीरे बढ़ती जाती है, वैसे ही दुष्ट और सज्जन की मित्रता होती है ।६०।

मृगमीनसज्जनानांतृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणमेव वैरिणो जगति॥६१॥

मृग और मछली क्रमशः घास खाकर और जल पीकर रहते हैं, तो भी शिकारी और मछेरे उससे द्वेष रखते हैं। वैसे ही सज्जन पुरुषों से दुर्जन पुरुष अकारण ही वैर रखते हैं ।६१।

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषित रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।

सज्जन प्रशंसा

भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः।।६२।।

सज्जनों के संग की इच्छा, पराये गुणों से प्रेम, गुरुजनों के समक्ष नम्रता, विद्या में अनुराग, निज पत्नी से प्रीति, लोक-निन्दा से भय, शिव की भक्ति, इन्द्रियदमन की शक्ति रखना और दुष्टों की संगति का परित्याग करना, यह श्रेष्ठ गुण जिनमें हैं, उन सज्जनों को नमस्कार।६२।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।६३।।

विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा-भाव, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम, यश में अभिरुचि, शास्त्र-श्रवण में चित्त, महात्मा पुरुषों के यह स्वाभाविक गुण हैं।६३।

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ।।६४।।

दान को गोपनीय रखना, गृह पर आगत का स्वागत-सत्कार करना, परोपकार करके चुप रहना, किसी अन्य द्वारा किये हुए उपकार को सभा में कहना, धन प्राप्त होने पर गर्व न करना, दूसरों की चर्चा में निन्दा-भाव न लाना यह तलवार की धार पर चलने के समान कठोर व्रत किसने बताया है ?।६४।

करे श्लाध्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाऽप्यैश्वर्ये प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥६५॥

हाथों की प्रशंसा दान में है, शिर की शोभा गुरुजन के चरणों में प्रणाम करने में है, मुख की शोभा सत्य बोलने में और भुजाओं की शोभा अपार बल प्रदर्शित करने में है। हृदय की श्लाघा स्वच्छता में और कानों की शोभा शास्त्र-श्रवण में है, सज्जनों के लिए यह सब ऐश्वर्य और महान् भूषण हैं ।६५।

सम्पत्सु महतां चित्तं भवेदुत्पलकोमलम् ।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ॥६६॥

महात्माओं का चित्त सम्पत्ति मिलने पर कमल के समान कोमल तथा आपत्ति पड़ने पर पर्वत की शिला के समान अत्यन्त कठोर होता है ।६६।

सन्तप्तायसिसंस्थितस्यपयसोनामापिनाज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्यांसागरशुक्तिमध्यपतितंतन्मौक्तिकंजायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥६७॥

तपते हुए लोहे पर पड़ने वाले जल का नाम भी नहीं जाना जाता अर्थात् चिन्ह भी शेष नहीं रहता, परन्तु वही जल कमल के पत्तों पर मोती के आकार का होजाता है। यदि वही जल स्वाति नक्षत्र में समुद्र की शुक्तियों पर पड़ जाय तो मोती बन जाता है। इससे यही विदित होता है कि शरीर-धारियों के अधम, मध्यम और उत्तम गुण संसर्ग से ही उत्पन्न होते हैं ।६७।

य: प्रीणयेत्सुचरितै: पितरं स पुत्रो
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्
एतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥६८॥

जो अपने श्रेष्ठ आचरण से पिता को प्रसन्न रखता है, वही पुत्र है, जो अपने पति का हित-चिन्तन करती है, वही पत्नी है और सुख-दु:ख दोनों अवस्थाओं में समान रहे, वही सच्चा मित्र है, इन तीनों की प्राप्ति पुण्यात्मा पुरुषों को ही होती है ।६८।

एको देव: केशवो वा शिवो वा
एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ।
एको वास: पत्तने वा वने वा
एको नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६९॥

आराध्य देव एक हो—केशव हो अथवा शिव, मित्र भी एक ही हो—राजा हो अथवा योगी । एक ही निवास स्थान हो—नगर में अथवा वन में और नारी भी एक ही हो—सुन्दरी हो अथवा गिरि की गुफा हो अर्थात् असुन्दर हो ।६९।

नम्रत्वेनोन्नमन्त:परगुणकथनै:स्वान्गुणान्ख्यापयन्त:
स्वार्थान्सम्पादयन्तोविततपृथुतरारम्भयत्ना:परार्थे ।
क्षान्त्यैवाक्षेयरूक्षाक्षपुमुखरमुखान्दुर्जनान्दूषयन्त:
सन्तसाश्चर्यचर्याजगतिबहुमता:कस्यनाभ्यर्चनीया:॥७०॥

जो नम्र रहकर उन्नति करते हैं, जो पराये गुणों का वर्णन करते हुए अपने गुणों को व्यक्त करते हैं, जो परोपकार करते हुए अपना भी कार्य-साधन करते हैं, जो दुर्जनों की निन्दित और

कठोर वाणी से युक्त मुख को क्षमा से ही दूषित करते हैं। इस प्रकार के उन आश्चर्यजनक दिनचर्या वाले सन्त पुरुषों को संसार में पूजनीय कौन नहीं मानता ? ।७०।

परोपकारी प्रशंसा

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घना ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥७१ ॥

जैसे फल लग जाने पर वृक्ष झुक जाते हैं, जैसे नवीन जल से भरे हुए मेघ पृथिवी पर गिरते हैं, वैसे ही समृद्धि को प्राप्त हुए सत्पुरुष भी झुक जाते है। क्योंकि परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा होता है ।७१।

श्रोत्रं श्रुतेनैवनकुण्डलेनदानेनपाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभातिकायःकरुणामयानां परोपकारैर्न तु चन्दनेन॥७२॥

श्रोत्रों की शोभा कुण्डल धारण से नहीं, शास्त्र श्रवण से है, हाथों की शोभा कंकण पहनने से नहीं, दान से है और करुणा परायण पुरुषों की शोभा चन्दन-लेपन से नहीं, वरन् परोपकार करने से होती है ।७२।

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं निगूहति गुणान्प्रकटीकरोति ।
आपद्गतञ्च न जहाति ददाति काले
समित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥७३॥

अपने मित्र के पाप कर्मों का निवारण करना, हित के कार्यों में युक्त करना, उसकी गुप्त बातों को छिपाये रखना, उसके

गुणों को प्रकट करना, उसका साथ कभी न छोड़ना और समय उपस्थित होने पर उसे सहायता करना, सन्तजनों ने यह सब लक्षण श्रेष्ठ मित्र के बताये हैं ।७३।

पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परिहितेषु कृताभियोगाः।।७४।।

बिना याचना किये ही सूर्य कमलों को खिलाता और चन्द्रमा कुमुदिनी को विकसित करता है। मेघ भी स्वयं ही जल की वर्षा करता है, क्योंकि सत्पुरुष बिना किसी की प्रार्थना के ही परोपकार में तत्पर रहते हैं ।७४।

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेनये ।
तेऽमी मानुषराक्षसः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।७५।।

सज्जन पुरुष अपना कार्य छोड़ कर भी पराये कार्य में तत्पर रहते हैं, इनमें जो सामान्य पुरुष हैं वे अपने कार्य में लगे रह कर पराया हित साधन करते हैं। परन्तु जो अपने लाभ के लिए पराया कार्य बिगाड़ देते हैं, वे मनुष्य होते हुए भी राक्षस हैं और जो अकारण ही किसी दूसरे के कार्य को बिगाड़ देते हैं, उन्हें क्या कहना चाहिए, यह मैं नहीं जानता ।७५।

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेनपयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ।

गन्तुं पावकमुन्मनास्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेनजलेनशाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥७६॥

जल के साथ मिले हुए दुग्ध ने उसे अपने सभी गुण प्रदान करके मैत्री दृढ़ की। फिर जल ने दुग्ध को जलता हुआ देखा तो उसे बचाने के लिए स्वयं को ही अग्नि में होम कर दिया। जल की यह दशा देख कर दूध ने भी अग्नि की ओर प्रयाण कर दिया, तब जल ने अपने शीतल छीटों से मित्र दुग्ध को स्थिर किया और तभी शान्त हो सका। अहो, सज्जन पुरुषों की मित्रता ऐसी ही होती है।७६।

इतःस्वपिति केशवःकुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते।
इतोऽपि बड़वानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो विततमूर्जितं भरसहञ्च सिन्धोर्वपुः ॥७७॥

समुद्र में एक ओर भगवान् विष्णु शयन करते हैं तो दूसरी ओर उनके शत्रु, एक ओर अपनी रक्षा की आकांक्षा से पर्वतों के समूह सोते हैं तो दूसरी ओर प्रलय काल की सम्वर्ताग्नि को साथ लिए हुए बड़वानल वृद्धि पर है। अहो, समुद्र कैसा महान् बलवान और भारसहन में समर्थ है, इसी प्रकार सज्जन भी होते हैं।७७।

तृष्णांछिन्धिभजक्षमांजहि मदं पापे रतिमाकृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान्मानयविद्विषोऽप्यनुनयप्रच्छादयस्वान्गुणान्
कीर्ति पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥७८॥

तृष्णा का त्याग करो, क्षमा को अपनाओ, अहंकार को छोड़ दो, पाप से चित्त हटाओ, सत्य बोलो, सज्जनों के पदानुयायी बनो, विद्वानों की सेवा करो, मान्य पुरुषों का मान करो,विद्वेषी को भी प्रसन्न रखो, अपने गुणों को व्यक्त करो, यह सभी लक्षण सत्पुरुषों के हैं ।७८।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुण परमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।७६।।

जिनके मन, वचन और काया में पुण्यमय पीयूष भरा है, जिन्होंने परोपकार से त्रिभुवन को प्रसन्न किया है और जिन्होंने दूसरे के अल्प से भी अल्प गुण को पर्वत के समान बढ़ा कर प्रसन्नता प्राप्त की है, ऐसे सन्त पुरुष संसार में कितने हैं ?।७६।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ।।८०।।

स्वर्ण का वह सुमेरु और रजत का वह हिमालय किस काम का, जिसके आश्रय में स्थित वृक्ष सदा वृक्ष ही रहे आते हैं। परन्तु वह मलयाचल ही धन्य है, जहाँ खड़े हुए कंकोल, नीम और कुटज के वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं ।८०।

धैर्य प्रशंसा

रत्नेर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥८१॥

समुद्र मन्थन के समय देवगण महान् रत्नों को पाकर भी प्रसन्न नहीं हुए, भयंकर विष की प्राप्ति से भयभीत न हुए और जब तक मन्थन न होगया उस कार्य से नहीं हटे। तात्पर्य यह है कि विद्वान् और धीर पुरुष अभीष्ट की प्राप्ति हुए बिना आरम्भ किये हुए कार्य को नहीं छोड़ते ॥८१॥

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपिः च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुखं न च सुखम् ॥८२॥

कभी भूमि पर सोते हैं तो कभी पलंग पर, कभो शाक का आहार करते हैं तो कभी शालि का ओदन (चावल का भात) भक्षण करते हैं, कभी गुदड़ी पहन कर दिन व्यतीत करते हैं तो कभी दिव्य वस्त्र पहनते हैं, इस प्रकार मनस्वी कार्यार्थी जब कार्य करने लगते हैं तो सुख, दुःख में भेद नहीं मानते ।८२।

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्यपात्रेव्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥८३॥

ऐश्वर्य का भूषण सुजनता, शौर्य का भूषण वाक् संयम, ज्ञान की शोभा शान्ति, शास्त्र की शोभा विनय, धन की शोभा सत्पात्र को दान, तप की शोभा अक्रोध, प्रभुत्व की शोभा क्षमा, धर्म की शोभा कपट-रहितता और अन्य सभी गुणों का कारण-रूप भूषण शील ही है ।८३।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥८४॥

नीतिनिपुण मनुष्य निन्दा करे या स्तुति, लक्ष्मी आये या चली जाय, मृत्यु आज ही हो अथवा युगान्तर में, परन्तु धीरज-वान् पुरुष न्याय मार्ग से पीछे कभी नहीं हटते ।८४।

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाऽऽखुर्विवरस्वयंनि पतितो नक्तं मुखे भोगिनः।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाःपश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौक्षये कारणम् ॥८५॥

जिस पिटारे में बन्द रहने के कारण पीड़ित हुआ सर्प जीवन की आशा का त्याग किये बैठा था, उसकी इन्द्रियाँ क्षुधा से शिथिल होगईं थीं, तभी रात्रि के समय एक चूहे ने उस पिटारे में छेद कर उसके भीतर प्रवेश किया और स्वयं ही सर्प के मुख में जा पड़ा। तब सर्प ने उसका भक्षण कर लिया और प्रसन्न होता हुआ पिटारे से बाहर निकल आया। अहो, देखो मनुष्यों की वृद्धि और क्षय का कारण दैव ही है ।८५।

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥८६॥

जिस पर हाथ के आघात से नीचे की ओर फेंकी हुई गेंद कुछ देर के लिए ऊपर की ओर ही उछलती है, वैसे ही साधुओं की विपत्ति भी अल्पकालीन होती है ।८६।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान्रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो वन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति ॥८७॥

मनुष्यों के शरीर में आलस्य ही घोर शत्रु है और उद्योग ही उसका ऐसा बन्धु है,जिसके करने पर कभी दुःख नहीं होता।८७।

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षोणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्र ।
इति विमृशन्तः सन्तः संतप्यन्ते न ते विपदा ॥८८॥

जैसे काटा हुआ वृक्ष काट कर भी पुनः बढ़ने लगता है, वैसे ही क्षीण हुआ चन्द्रमा भी पुनः बढ़ता जाता है । ऐसा जानकर सत्पुरुष संकटकाल में भी कभी दुःखित नहीं होते ।८८।

देव प्रशंसा

नेता यस्य वृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किलहरेरैरावतो वारण ।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद्भग्नः परैः सङ्गरे
तद् व्यक्तं वरमेव दैवशरणंधिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥८९॥

जिसके नेता (मन्त्रदाता) बृहस्पति, वज्र जिसका आयुध, देवगण सैनिक, स्वर्ग दुर्ग और ऐरावत जिसका हाथी है, ऐसे सब प्रकार के ऐश्वर्य और बल से समन्वित होकर भी रण में शत्रु से

हारता रहता है, इससे यही मानना होता है कि दैव ही शरण लेने योग्य है और वृथा पौरुष को धिक्कार है ।८९।

कर्मायत्तं फलं पुन्सां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया कार्यं कर्तव्यं सुविचारतः ॥९०॥

मनुष्य कर्म के अनुसार फल भोगता है और कर्म के अनुसार ही बुद्धि होजाती है । तो भी समझ सोचकर कार्य करना बुद्धिमान का कर्त्तव्य है ।९०।

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैःसन्तापिते मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्न सशब्दं शिरः
प्रायोगच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः॥९१॥

गंजा मनुष्य सूर्य के ताप से शिर को बचाने के लिए छायामय तालवृक्ष के नीचे आया और वहां उस वृक्ष से एक बड़ा फल गिरने के कारण उसका शिर फट गया । इस प्रकार भाग्यहीन पुरुष जहाँ-जहाँ जाता है, विपत्ति भी वहीं-वहीं (उसके पीछे-पीछे) जाती है ।९१।

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं
गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमताञ्चविलोक्यदरिद्रतां
विधिरहोबलवानितिमेमतिः ॥९२॥

सूर्य-चन्द्र का राहु के द्वारा ग्रहण, हाथी और सर्प का बन्धन तथा विद्वानों की दरिद्रता को देखकर मैं विधना को ही बलवान् समझता हूँ ।९२।

सृजति तावदशेषगुणाकरं
पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः ।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति
चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥९३॥

ब्रह्मा की कैसी मूर्खता है कि वह गुणों के सभी आकार तथा भूमि के अलंकार रूप जिस पुरुष और रत्नादि की रचना करता है उसे क्षणभंगुर ही बनाता है ।९३।

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोकते यदिदिवा सूर्यस्य किंदूषणम् ।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कःक्षमः ॥९४॥

यदि करील के वृक्ष में पत्ते उत्पन्न न हों तो इसमें बसन्त ऋतु का क्या दोष है ? यदि दिन में उल्लू को दिखाई न दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष है ? यदि चातक के मुख में जल की धारा न पड़े तो इसमें मेघ का क्या दोष है ? जो विधाता ने पहले ही ललाट में लिख दिया है, उसको मिटाने में कौन समर्थ होसकता है ? ।९४।

कर्म प्रशंसा

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ।
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किञ्च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्या विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥९५॥

हम जिन देवयाओं को नमस्कार करते हैं, वे देवता भी विधाता के वश में पड़े हुए हैं। इसलिए हम भी विधाता को नमस्कार करते हैं, जो कि हमारे कर्मों के अनुसार ही फल देता है। जब कर्म के अनुसार ही फल मिलना है, तब हमें देवताओं से और विधाता से ही क्या प्रयोजन ? इसलिए उस कर्म को ही नमस्कार करना चाहिए, जिस पर विधाता का भी कोई वश नहीं चल पाता।६५।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमःकर्मणे॥६६॥

जिसने ब्रह्माण्ड रूपी पात्र के उदर में सृष्टि रचने के लिए ब्रह्मा को कुम्हार के समान नियुक्त किया, जिसने विष्णु को दश अवतार धारण करने रूपी घोर संकट में डाल दिया, जिसने रुद्र को खप्पर हाथ में लेकर भिक्षा मांगने के लिए वाध्य किया और जसने सूर्य को आकाश भ्रमण का कार्य सोंपा, उस कर्म को नमस्कार है।६६।

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं
विद्याऽपि नैव न च यत्कृतापिसेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलुसञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥६७॥

फल देने में न तो सुन्दर आकृति ही उपयोगी है और न कुल, शील, विद्या अथवा परिश्रमपूर्वक की गई सेवा, वरन् पूर्व

जन्म में किये गये तप से सिंचित कर्म ही समय प्राप्त होने पर वृक्ष के समान फल देते हैं ।९७।

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ।।९८।।

वन, युद्ध, शत्रु, जल, अग्नि और समुद्र में अथवा पर्वत के शिखर पर, सुप्त अवस्था या प्रमत्त और विषम अवस्था में पूर्व जन्म में किये हुए (शुभ) कर्म ही रक्षा किया करते हैं ।९८।

या साधूंश्रखलान्करोतिविदुषोमूर्खान्हितान्द्वेषिणः
प्रत्यक्षकुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात् ।
तामाराधयसत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलंवाञ्छितं
हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा माकृथाः ।।९९।।

जो सत्क्रिया दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को विद्वान्, शत्रुओं को मित्र, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष और विष को अमृत बनाने में समर्थ है, उसी की आराधना करो। हे साधो ! अनेक गुणों के साधन में श्रम करना व्यर्थ है ।९९।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्त
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ।।१००।।

अच्छे या बुरे कर्म करने से पहले विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि उसके परिणाम पर भले प्रकार विचार कर ले, क्योंकि

बिना विचारे शीघ्रता में किये हुए कर्म का फल मरण पर्यन्त काँटे के समान हृदय पें दाह करता रहता है ।१००।

स्थाल्यांवैदूर्यमण्यांपचतितिलकणांश्चान्दनैरिन्धनाद्यै:
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ।
छित्वाकर्पूरखण्डान्वृतिमिहकुरुतेकोद्रवाणां समन्तात्
प्राप्येमां कर्मभूमिंचरतिनमनुजोयस्तपोमन्दभाग्यः।।१०१।।

जो मन्दभागी पुरुष इस कर्म भूमि में जन्म लेकर तपश्चर्या कर्म नहीं करता, वह वैदूर्य मणि से निर्मित स्वर्ण पात्र में मानों चन्दन की लकड़ी जला कर दानों को पकाता है और आक के वृक्ष के मूल का पता लगाने के लिए सोने का हल जोतता तथा कर्पूर के टुकड़ों को काट-काट कर मेढ़ लगाता है ।१०१।

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुञ्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याःकलाःशिक्षतु ।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं
नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्यनाशःकुतः ।।१०२।।

चाहे समुद्र में गोता लगावे या सुमेर के शिखर पर चढ़ जाय, चाहे शत्रुओं को जीते और चाहे वाणिज्य, कृषि, सेवा इत्यादि सभी कलाओं में निपुणता प्राप्त करले अथवा पक्षियों के समान आकाश में उड़ने में समर्थ होजाय, तो भी अनहोनी का न होना सम्भव नहीं है ।१०२।

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य ।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ।।१०३।।

जिसने पूर्वजन्म में बहुत पुण्य किये हैं, उसके लिए भयंकर बन भी श्रेष्ठ नगर बन जाता है, सभी मनुष्य उसके लिए सज्जन होजाते हैं और यह सम्पूर्ण पृथिवी विपुल धनरत्न से सम्पन्न होजाती है ।१०३।

को लाभो गुणिसंगमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः संगतिः
का हानिःसमयच्युतिर्निपुणता ना धर्मतत्त्वे रतिः ।
कः शूरो विजितेन्द्रियःप्रियतमा काऽनुव्रता किं धनं
विद्याकिं सुखमप्रवासगमनं राज्यंकिमाज्ञाफलम् ॥१०४॥

संसार में उत्पन्न होने का क्या लाभ है ? गुणवानों का संग । दुःख क्या है ? मूर्खों की संगति । हानि क्या है ? समय को व्यर्थ व्यतीत करना । निपुणता क्या है ? धर्म में अनुराग रखना । शूर कौन है ? इन्द्रियों को जीतने वाला । प्रियतमा कौन है ? पतिव्रता भार्या । धन क्या है ? विद्या । सुख क्या है ? परदेश में न जाना । राज्य क्या है ? आज्ञा का पालन होना ।१०४।

मालतीकुसुमस्येव द्वे गती स्तो मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥१०५॥

मालती के पुष्पों के समान मनस्वी पुरुषों की दो ही गति हैं—या तो वे सब के मुकुट होकर रहते हैं या वन में जाकर ही शरीर छोड़ते हैं ॥१०५॥

अप्रियवचनदरिद्रैःप्रियवचनाढ्यैःस्वदारपरितुष्टैः।
परपरिवादवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥१०६॥

अप्रिय वचन कहने वाले, प्रिय बोलने वाले, अपनी पत्नी से सन्तुष्ट और पर निन्दा से दूर रहने वाले पुरुषों से यह पृथिवी कहीं-कहीं ही विभूषित होती है ॥१०६॥

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिःकुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमंशीलंसमुन्मीलति ॥१०७॥

जिसके शरीर में अखिल विश्व का अत्यन्त प्रिय शील प्रतिष्ठित है, उसके लिए अग्नि जल के समान, समुद्र क्षुद्र नदी के समान, सुमेरु अल्प शिला के समान, सिंह मृग के समान, सर्प पुष्पमाला के समान और विष भी पीयूष की वर्षा करने वाला हो जाता है ।१०७।

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणैव परिस्फुरित तेजसा ॥१०८॥

एक ही शूर सम्पूर्ण पृथिवी को पदाक्रान्त करके इस प्रकार वश में कर लेता है, जिस प्रकार कि सूर्य सम्पूर्ण विश्व को अपने प्रकाश से वश में कर लेता है ।१०८।

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
र्नशक्यते धैर्यगुणाः प्रपार्ष्टुम ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने
नधिः शिखायाति कदाचिदेव ॥१०९॥

कैसा भी कष्ट क्यों न आ पड़े, धीरजवान् पुरुष धैर्य को नहीं छोड़ता । अग्नि की ज्वाला कितनी भी नीची करदी जाय, परन्तु वह ऊपर को ही जाती है ।१०९।

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्त शुद्धहृदयामनु वर्तमानाम् ।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सत्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥११०॥

सत्य व्रतधारी तेजस्वी मनुष्य लज्जा आदि गुणों को उन्पन्न करने वाली, माता के समान पवित्र हृदया एवं सदैव स्वाधीन रहने वाली अपनी प्रतिज्ञा को कभी नहीं त्यागते, चाहे उनके प्राण ही क्यों न चले जाँय।११०।

※ नीति शतक समाप्त ※

श्रृंगार शतक

मंगलाचरण

शम्भु स्वयम्भु हरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ।
वाचामगोचर चरित्र विचित्रिताय
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥१॥

जिसने शिव, ब्रह्मा और विष्णु को भी मृगनयनियों के गृह-कर्म का दास बना दिया, उस विचित्र चरित्र वाले एवं वाणी से भी अगोचर कुसुमायुध कामदेव को नमस्कार है ॥१॥

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया
पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्ष वीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥२॥

स्त्रियाँ मन्द मुसकान, लज्जा भाव, मुख फेरना, अर्द्ध कटाक्ष, मधुर भाषण, ईर्ष्या, कलह आदि क्रीडा के अनेक भावों का प्रदर्शन करती हुई, पुरुष के लिए बन्धन स्वरूप होती हैं ॥२॥

भ्रूचातुर्यात्कुञ्चिताक्षाः कटाक्षः
स्निग्धा वाचो लज्जितान्ताश्च हासाः।
लीलामन्दं प्रस्थितञ्च स्थितञ्च
स्त्रीणामेतद् भूषणं चायुधञ्च ॥३॥

भ्रू चातुर्य पूर्वक कटाक्ष करना, मधुर वचन कहना, लज्जा दिखाते हुए हंसना, लीला पूर्वक मन्द गति से चलना आदि भाव स्त्रियों के भूषण और आयुध हैं ॥३॥

क्वचित्सभ्र भङ्गैः क्वचिदपि च लज्जापरिणतैः
क्वचिद्भीतित्रस्तै क्वचिदपि च लीलाविलसितैः।
नवोढानामेभिर्वदनकमलैर्नेत्रचलितैः
स्फुरन्नीलाब्जानां प्रकरपरिपूर्णा इव दृशः ॥४॥

नवोढा सुन्दरियाँ कभी अपनी भ्रू-भंगिमा से, कभी जाल-प्रदर्शन से, कभी भय से त्रस्त होने के भाव से कभी लीलामय विलास से और कभी नेत्रों के व्यापार से दिशाओं को खिले हुए नील कमलों के समूह का अनुभव कराती हैं ॥४॥

वक्त्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने
वर्णःस्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुःकचानाञ्चयः।
वक्षोजाविभकुम्भसंभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली
वाचांहारिच मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम्॥५॥

चन्द्रमा के समान विकसित मुख कमल की हँसी उड़ाने वाले नेत्र, स्वर्ण को भी लजाने वाली देह-कान्ति, भ्रमरियों के समूहों को विजय करने वाले केश, हाथी के कुम्भस्थल की शोभा हरण करने वाले वक्षोज, स्थूल नितम्ब, मनोहारिणी, मदमयी, मधुर वाणी आदि युवतियों के स्वाभाविक भूषण हैं ॥५॥

स्मितं किञ्चिद्वक्त्रे सरलतरलो दृष्टिविभवः
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोसोक्तिसरसः ।

गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिकरः ।
स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिह न हि रम्यं मृगदृशः ॥६॥

मन्द मुसकान युक्त मुख, सरल-तरल दृष्टि, वार्तालाप में अभिनव सरस उक्तियों का समावेश तथा नवीन पल्लव के समान लीलायुक्त गति आदि तथा युवावस्था आरंभ के आरंभ में ऐसा कौन-सा अंग है, जिसमें रमणीयता नहीं होती ? ॥६॥

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्नं मुखं
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्वचः ।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनु-
र्ध्येयं किं नवयौवनं सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः॥७॥

सहृदय रसिकजनों के लिए देखने योग्य श्रेष्ठ वस्तु क्या है ? मृगनयनी का प्रेम से प्रसन्न मुख । घ्राण के योग्य उत्तम पदार्थ क्या है ? उसके मुख का श्वास । सुनने योग्य क्या है ? उसके प्रिय वचन । स्वादिष्ट पदार्थों में सेवन योग्य क्या है ? उसके ओष्ठपल्लवों का रस । स्पर्श योग्य क्या है ? उसका शरीर और ध्यान योग्य क्या है ? उसका नवयौवन और हाव-भाव का विलास ॥७॥

एताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ-
झङ्कारनूपुरपराजितराजहंस्यः ।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो-
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥८॥

जिन्होंने अपने कंकणों और करधनी में युक्त घुंघरुओं के शब्द से तथा नूपुरों की झंकार से राजहंसियों के मधुर कल-निनाद और मन्दगति को भी जीत लिया है, वे तरुणियाँ भय-

मुग्ध हरिणी के समान कटाक्षों से किसके मन को वश में नहीं कर लेतीं ? ।८।

कुंकुमपङ्ककलङ्कितदेहा गौरपयोधरकम्पितहारा ।
नूपुरहंसरणत्पदपद्माकं नवशीकुरुते भुवि रामा ॥९॥

केशर के उबटन से जिसका शरीर कान्तियुक्त होरहा है, जिसके गोरे पयोधरों पर हार झूलता है, जिसके पदपद्म में नूपुर रूपी हंस विहार कर रहे हैं, ऐसी सुन्दरी किसे नहीं जीत लेती ? ॥६॥

नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम् ।
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः
शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथंताः ॥१०॥

वे कविवर विपरीत मति वाले हैं, जो स्त्रियों को अबला कहा करते हैं। क्योंकि जो चंचल दृष्टि की मार से इन्द्रादि को भी जीतने में समर्थ हैं, वे अबला कैसे कही जा सकती हैं ? ॥१०॥

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रूवो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्रसञ्चारसूचितेषु प्रवर्तते ॥११॥

अवश्य ही कामदेव सुन्दर भृकुटी वाली इन स्त्रियों का आज्ञाकारी दास है। क्योंकि यह जिसकी ओर नेत्र चलाती हैं, उधर ही कामदेव अपना कार्य आरम्भ कर देता है ॥११॥

केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने
अन्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिःकीर्णं द्विजानां गणैः ।

मुक्तानां सतताधिवासरुचिरौ वक्षोजकुम्भाविमा
वित्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते क्षोभं करोत्येवनः।१२।

संवारे हुए केश, कान तक पहुँचते हुए नेत्र, स्वच्छ दन्त पंक्तियों से युक्त मुख, मुक्तावलियों से सुशोभित कुम्भ के समान वक्ष, इस प्रकार हे तन्वि ! तेरा प्रशान्त शरीर भी मेरे मन में क्षोभ उत्पन्न कर रहा है ।।१२।।

मुग्धे धानुष्कता केयप पूर्वा त्वयि दृश्यते ।
यदाहरसि चेतांसि गुणैरेव व सायकैः ।।१३।।

हे मुग्धे ! तुम में धनुर्विद्या की यह अपूर्व कुशलता कैसी दिखाई देती है, जो अपने गुणों से ही पुरुषों के चित्त को बाणों के बिना ही वेधती है ।।१३।।

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारास्वीन्दुषु ।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत् ।।१४।।

अंधकार नाशक दीपक, अग्नि, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्रमा आदि के होते हुए भी यदि मृगशावक जैसे नयन वाली मेरे पास नहीं तो यह सम्पूर्ण जगत् ही अंधकार युक्त है ।।१४।।

उद्वृत्तः स्तनभार एष तरले नेत्रे चले भ्रूलते
रागान्धेषु तदोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नाम व्यथाम् ।
सोभाग्याक्षरपंक्तिरेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं
मध्यस्थापिकरोतितापमधिकं रोमावलिःकेनसा ।।१५।।

उन्नत पयोधरों का भार, तरल नेत्र, चंचल भौंहें, और राग-युक्त ओठपल्लव,यह सब तो भले ही व्यथित करें, क्योंकि तेरे ललाट में सौभाग्य-अक्षर की पंक्ति स्वयं कामदेव द्वारा

लिखीहुई है। परन्तु तेरी यह रोमावलि मध्यस्थ को तटस्थ रहना ही उचित है ।१५।

गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता ।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा ।।१६।।

वह स्त्री अपने भारी स्तनों के भार से, प्रकाशमान मुख रूपी चन्द्र से और मन्दगति वाले दोनों पाँवों से ग्रहमयी प्रतीत होती है ।१६।

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः ।
पाणिभ्यां पद्मरागाभ्या रेजे रत्नमयीव सा ।।१७।।

चन्द्रकान्त मणि जैसे मुख, महानील मणि जैसे केश और पद्मराग मणि जैसे हाथों से वह रत्नमयी ही प्रतीत होती है ।१७।

तस्याः स्तनौ यदि घनौ जघनश्च हारि
वक्त्रं च चारु तव चित्त किमाकुलत्वम् ।
पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ।।१८।।

उसके स्तन यदि घने हैं, जघन-भाग मनोहर और मुख सुन्दर है तो हे चित्त ! तू व्याकुल क्यों होता है। इन्हें प्राप्त करना चाहता है तो पुण्य कर, क्योंकि पुण्य के बिना इच्छित पूर्ण नहीं होता ।१८।

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्य-
मार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ।
सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणा-
मुत स्मरस्मेरविलासिनीनाम् ।।१९।।

विज्ञपुरुषो ! मत्सरता-रहित होकर और कर्त्तव्य का निश्चय करके बताओ कि पर्वत के नितम्ब (मध्य भाग) और काम-विलासिनी के नितम्ब में से किसका आश्रय उचित है ।१९।

संसारेऽस्मिन्नासारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां
तत्वज्ञानामृताम्भःप्लवललितधियांयातुकालःकदाचित् ।
नोचेन्मुग्धांगनानां स्तन जघनभराभोगसंभोगिनीनां
स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलीलोद्यतानाम्२०

इस परिवर्तनशील संसार में पंडितों की दो ही गतियाँ हैं—तत्वज्ञान रूप अमृत के सरोवर में गोते लगाना या स्तन-जघन के विस्तार में संसर्ग की कामना वाली मुग्धांगनाओं की स्मर मन्दिर की स्थूल भूमि पर करतल स्पर्श करते हुए क्रीडा में उद्यत रहना ।२०।

सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥२१॥

स्त्रियाँ सम्मोहन करतीं, मद, उँडेलतीं, विडम्बना करतीं, भर्त्सना करतीं, रमण करतीं और फिर विषाद करती हैं। इस प्रकार पुरुषों के हृदय में प्रवेश करके यह क्या नहीं करतीं ।२१।

विश्रम्य विश्रम्य वनद्रुमाणां
छायासु तन्वी विचचार काचित् ।
स्तनोत्तरीयेण करोद्धृतेन
निवारयन्ती शशिनो मयूखाम् ॥२२॥

कोई नवयौवना वन के वृक्षों की छाया के नीचे विश्राम करके हाथ से उठाये हुए आँचल के द्वारा चन्द्रमा की किरणों का निवारण करती हुई चल रही है ॥२२॥

अदर्शने दर्शनमात्रकामा
दृष्ट्वा परिष्वङ्गरसैकलोलाः ।
आलिंगितायाः पुनरायताक्ष्यां
आशास्महेविग्रहयोरभेदम् ॥२३॥

जब तक उसे देख नहीं लेते, तब तक देखने की इच्छा होती है, देख लेने पर उससे आलिंगन की और आलिंगन होने पर उससे पृथक् न होने की इच्छा रहती है ॥२३॥

मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी
चन्दनं वपुषि कुंकुमान्वितम् ।
वक्षसि प्रियतमा मनोहरा
स्वर्ग एष परिशिष्ट आगमः ॥२४॥

खिले हुए मालती पुष्पों की माला पहिने, केशरमिश्रित चन्दन-राग को लगाये यदि प्रियतमा हृदय से लगी है तो स्वर्ग यही है, अन्य स्वर्ग बताने वाला शास्त्र व्यर्थ है ॥२४॥

प्राङ्मामेति मनागनागतरसं जाताभिलाषं ततः
सव्रीडं तदनु श्लथोद्यतमनुप्रध्वस्तधैर्यं पुनः ।
प्रेमार्द्रं स्पृहणीयनिर्भररहःक्रीडाप्रगल्भं ततो
निःशङ्कांगविकर्षणादिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् ॥२५॥

कुलीन नारियाँ प्रथम इंकार, फिर रस उत्पन्न होने पर लज्जाभाव और तत्पश्चात् जँभाई आदि प्रदर्शित करती है,

तदुपरान्त धोरता छोड़ कर अनुकूल होती हुई प्रेम-रस पूर्ण केलि में अंगों के आकर्षण द्वारा रति-सुख प्रदान करती हैं ।२५।

उरसि निपतितानां स्त्रस्तधम्मिल्लकानां
मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम् ।
सुरतजनितस्वेदस्विन्नगण्डस्थलीना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ।।२५।।

हृदय पर लेटी हुई, केशपाश खुले, अर्द्ध उन्मीलित नेत्र, सुरतजनित खेद से परिश्रान्त एवं स्विन्न गण्डस्थल वाली कामिनियों का अधरामृत विरले भाग्यवान ही पीते हैं ।२६।

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोऽनुसंविदं कुरुते ।
मिथुनैमिथोऽवधरितसवितथमिदमेवकामनिर्वहणम्।।२७।।

सुरत के आनन्द से आमीलित नेत्र वाली तरुण-तरुणियों के अनुभव में आने वाला रसास्वादन ही पुरुषार्थ का लक्षण है।२७।

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां
यदिह जरास्वपि मान्यथा विकाराः ।
तदपि च न कृतं नितम्बिनीनां
स्तन पतनावधि जीवितं रत वा ।।२८।।

विधाना ने यह उचित नहीं किया कि मनुष्यों में वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी काम का विकार उत्पन्न होता है तथा नितम्बिनियों के वक्ष-पात होने पर भी वे रति की इच्छा करती हैं ।२८।

एतत्कामफलं लोके यद् द्वयोरेकचित्तता ।
अन्यचित्तकृते कामं शवयोरिव संगमः ।।२६।।

संसार में काम का फल यही है कि संसर्ग काल में स्त्री-पुरुष एक चित्त हो जाँय, क्योंकि भिन्न-भिन्न चित्त रहने पर वह समागम मृतकों के समागम के समान है ॥२६॥

आवासः क्रियतां गाङ्गे पापवारिणि वारिणि ।
स्तनमध्ये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि ॥३०॥

पाप नाशक जल वाले गंगा तट पर रहे अथवा हार धारण करने वाली मनोहारिणी के वक्षस्थल में निवास करे ।३०।

वसन्त ऋतु वर्णन

मधुरयं मधुरैरपि कोकिला
कलकलैर्मलयस्य च वायुभिः ।
विरहिणः प्रणिहन्ति शरीरिणो
विपदि हन्त सुधापि विषायते ॥३१॥

यह वसन्त ऋतु कोकिला के मधुर-मधुर शब्दों से और मलयाचल से प्रवाहित वायु के द्वारा विरहीजनों को मारता है, इससे यही समझना चाहिए कि विपत्ति के समय अमृत भी विष बन जाता है ।३१।

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्च्छितदिगन्ते ।
मधुरमधुविधरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठ ॥३२॥

आम्र-मंजरियो की सुगन्ध से व्याप्त तथा मधुर मकरन्द के पान से मदोन्मत्त हुए भौंरों से युक्त वसन्त में किसका मन उत्कंठित नहीं होजाता ।३२।

ग्रीष्म ऋतु वर्णन

अच्छार्द्रचन्दनरसार्द्रकरा मृगाक्ष्यो
धारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च ।

मन्दो मरुत्सुमनसः शुचि हर्म्यपृष्ठः
ग्रीष्मे मदं च मदनं च विवर्धयन्ति ।।३३।।

जिनके हाथों में स्वच्छ आर्द्र चन्दन लगा है, ऐसी मृगनयनियाँ फव्वारा युक्त गृह, सुगन्धित कुसुम, चाँदनी रात, मन्द वायु के झोंके और भवन की स्वच्छ छत, ग्रीष्म ऋतु में यह सब काम की वृद्धि करते हैं ।३३।

स्रजो हृद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्रकिरणाः
परागः कासारो मलयजरजः शीधु विशदम् ।
शुचिः सौधोत्सङ्गः प्रतनु वसनं पङ्कजदृशो
निदाघे तूर्णं तत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः ।।३४।।

हृदय को अमोद देने वाली पुष्पमालाएँ, पंखे की हवा, चन्द्रमा की किरणें, पुष्पों की पराग, सरोवर, चन्दन की रज, मद्य, विशाल भवन, सूक्ष्म वस्त्र और कमल जैसे नेत्रों वाली रमणियों का सुख पुण्यात्माओं को ही मिला सकता है ।३४।

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदमलरश्मि. शशधरः
प्रियावक्त्राम्भोजं मलयजरजश्चातिसुरभि ।
स्रजो हृद्यामोदास्तदिदमखिल रागिणि जने
करोत्यन्तः क्षोभं न तु बिषयसंसर्गबिमुखे ।।३५।।

सफेदी से पुता हुआ उज्वल भवन, स्वच्छ रश्मियों से युक्त चन्द्रमा, प्रिया का मुख कमल, सुगन्धित चन्दन, हृदय पर पुष्पों की माला, यह सब विषयानुरागियों को ही क्षुब्ध करते हैं, विषयसंसर्ग से विमुखों को नहीं। ।३५।।

वर्षा ऋतु वर्णन

तरुणी चैषा दीपितकामा विकसज्जातीपुष्पसुगन्धिः ।
उन्नतपीनपयोधरभारा प्रावृट् कुरुते कस्य न हर्षम्।।३६।।

कामोद्दीपन करने वाली, विकसित जाति पुष्पों से सुगन्धित, उन्नत पीन पयोधर के भार से झुकी हुई तरुणी के समान वर्षा ऋतु किसे हर्षित नहीं करती ?।३६।

वियदुपचितमेघं भूमयः कन्दलिन्यो
नवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः ।
शिखिकुलकलकेकारावरम्याः वनान्ताः
सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ।।३७।।

मेघ से युक्त आकाश,नवांकुरों से युक्त, भूमि,नवीन विकसित कुटज और कदम्ब के पुष्पों से सुगन्धित वायु, मयूरों की वाणी से मुखरित रमणीक वन प्रदेश आदि सुखी-दुःखी सब प्रकार के पुरुषों में उत्कण्ठा की वृद्धि करते हैं ।३७।

उपरि धनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोऽपि नतितमयूराः ।
वसुधाकन्दलधवलाहृष्ट्वा पथिकःक्वयातु संत्रस्तः।।३८।।

ऊपर छायी हुई घनघोर घटा सब ओर नाचते हुए मयूर, विविध अंकुरों से स्वच्छ हुई पृथिवी, इस प्रकार क्षुब्ध करने वाली वस्तुओं के सर्वत्र व्याप्त रहने पर बेचारा विरही पुरुष किधर जाय ?।३८।

इतोविद्युद्वल्लीविलसितमितः केतकितरोः
स्फुरद्गन्धः प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमितः ।

इतः केकीक्रीडाकलकलरवः पक्ष्मजदृशां
कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाःसम्भृतरसाः ॥३९॥

कहीं विद्युत् चमकती है, कहीं केवड़े की सुगन्धि प्रवाहित है, कहीं मेघ गर्जता है तो कहीं मयूरों की क्रीड़ा का कलख हो रहा है, तब ऐसी रसभरी अवस्था में विरहणियों के दिन किस प्रकार व्यतीत हो सकते हैं ॥३९॥

असूचीसञ्चारे तमसि नभसि प्रौढजलद-
ध्वनिप्राये तस्मिन् पतति दृषदा नीरनिचये ।
इदं सौदामिन्याः कनककमनीयं विलसितं
मुदं च ग्लानिं च प्रथयति पथिष्वेव सुदृशाम् ॥४०॥

सुई भी दिखाई न दे, ऐसे अन्धकार में, मेघों का गम्भीर गर्जन होता रहने पर, जल की वर्षा के समय स्वर्ण जैसी आभा वाली विद्युत की दमक अभिसारिकाओं को मार्ग दिखाई देते समय तो आनन्दमयी और स्वयं प्रकट होजाने पर दुःखदायिनी होती है ।४०।

आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं बहिः शक्यते
शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिङ्ग्यते।
जाताः शीतलशीकराश्च मरुतो रत्यन्तखेदच्छिदो
धान्यानां बत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासङ्गमे ॥४१॥

घनघोर वर्षा के कारण प्रियतम घर से नहीं निकलते और शीत की अधिकता से स्त्रियाँ प्रगाढ़ आलिंगन किये रहती हैं तथा शीतल जलकणों से युक्त वायु से रतिश्रम दूर होता है, इस प्रकार पुण्यवानों के लिए दुर्दिन भी सुदिन रूप होजाते हैं ।४१।

शरद् ऋतु वर्णन

अर्द्धंनीत्वानिशाया:सरभससुरतायासखिन्नश्लथाङ्गः
प्रोद्भूतासह्यतृष्णोमधुमदनिरतो हर्म्यपृष्ठे विविक्ते।
सम्भोगावलान्तकान्ताशिथिलभुजलतावर्जितंकर्करीतो
ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारंनपिवतिसलिलशारदंमन्दभाग्य:।४२।

अर्द्ध रात्रि व्यतीत होने पर समागम के कारण शिथिल अंग वाला, अत्यन्त तृषित, मद में चूर जो पुरुष सुरत से परिश्रान्त हुई प्रियतमा द्वारा प्रदत्त ज्योत्स्ना के समान स्वच्छ जल का शरद् ऋतु में पान नहीं करता, वह मन्दभाग्य होता है ।४२।

हेमन्त ऋतु वर्णन

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना मञ्जिष्ठवासोभृत:
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुषः खिन्ना विचित्रैः रतैः।
पीनोर:स्थलकामिनीकनकृताश्लेषा गृहाभ्यान्तरे
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते ॥४३॥

हेमन्त ऋतु में दही, दूध और घृत का सेवन करने वाले, देह में केशर का उबटन लगाए हुए, अनेक प्रकार की केलि से क्लान्त पीन वक्षस्थल वाली नारियों के आलिंगित तथा ताम्बूल के सेवन में तत्पर जो पुरुष सुखपूवक घर में शयन करते हैं, वे धन्य हैं ।४३।

शिशिर ऋतु वर्णन

चुम्बन्तोगण्डभित्तारलकवतिमुखेसीत्कृतान्यादधाना:
वक्ष:सूत्कञ्चुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्त: ।

ऊरूनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटात्स्र ंसयन्तोऽशुकानि
व्यक्तं कान्ताजनानांविटचरितकृतःशैशिरावान्तिवाताः।४४।

नारियों के कपोलों का चुम्बन, घुँघराले केशों से शोभित एवं सीत्कार करता हुआ मुख, कंचुकी से युक्त वक्ष में रोमांच और जंघाओं में गुदगुदी आदि का भी पुरुष के समान आचरण करने वाली शिशिर ऋतु की वायु प्रवाहित है ।४४।

केशानाकुलयन्दृशो मुकुलयन्वासो बलादाक्षिप-
न्नातन्वम्पुलकोद्गमं प्रकटयन्नुद्वेगकम्पं गतौ ।
वारं वारमुदारसीत्कृतवशाद्दन्तच्छदान्पीडयन्
प्रायःशैशिर एष सम्प्रति मरुत्कान्तासु कान्तायते ।।४५।।

केशों को बिखेरता, नेत्रों को कुछ-कुछ मूँदता, साड़ी को बलपूर्वक उड़ाता, रोमांच को उत्पन्न करता, देह में उद्वेग और कम्प प्रकट करता, बारम्बार अधरों को सीत्कार सहित पीड़ित करता हुआ शिशिर ऋतु का यह पवन कान्ताओं के प्रति कान्त जैसा आचरण करता है ।४५।

असाराः सन्त्येते विरतिविरसायासविषया
जुगुप्सन्तां यद्वा ननु सकलदोषास्पदमिति ।
तथाप्यन्तस्मत्त्वे प्रणिहितधियामप्यतिबल-
स्तदीयाऽनाख्येयः स्फुरति हृदयेकोऽपि महिमा ।।४६।।

सांसारिक सभी भोग सार-रहित, पापों को उत्पन्न करने वाले और सभी दोषों को प्रकट करने वाले हैं, इसलिए सुखाकांक्षा हो तो इन्हें छोड़ दे । यद्यपि इन भोगों की महिमा बलबती है, तोभी यदि किसी भोग में पुण्य हो भी तो वह परहित में ही हो सकता है ।४६।

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामाप्तगुरवो
विदग्धालापानां वयमपि कवीनामनुचराः ।
तथाप्येतद्भूमौ नहि परहितात्पुण्यमाधिकं
न चास्मिन्संसारे कुवलयदृशस्त्वन्यमपरम् ॥४७॥

तुम वेदान्तियों के गुरु हो और मैं भी श्रेष्ठ कवियों का अनुचर हूँ। तथापि इस लोक में परोपकार से बढ़ कर न कोई पुण्य है और न कमल-नेत्री नारी से बढ़कर कोई अन्य परम सुन्दर वस्तु ।४७।

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापै-
र्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ।
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा ॥४८॥

इस लोक में निरर्थक प्रलाप से क्या प्रयोजन है ? क्योंकि पुरुषों के लिए दो वस्तु ही सदा सेवन करने के योग्य हैं—सुन्दरियों के अभिनव मदलीला युक्त पुष्ट वक्षस्थल के भार से लसित यौवन अथवा वन ।४८।

दुर्विरक्त वर्णन

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाता-
ल्लोकेषु सर्वेषु च तथ्यमेतत् ।
नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्यो
दुःखैकहेतुर्न च कश्चिदन्यः ॥४९॥

हे लोगों, मैं पक्षपातपूर्वक नहीं, वरन् सत्य कहता हूँ कि इस लोक में सभी सुखों की सारभूता एवं मन के हरण करने वाल

नितम्बिनियों के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु सुखदायक नहीं है, और न इसके अतिरिक्त कोई दुःखदायक ही है ।४६।

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः ।
यावदेव न कुरंगचक्षुषांताडयतेचपललोचनाञ्चलै ॥५०॥

विवेकवानों के हृदय में विवेकरूपी स्वच्छ दीपक तभी तक प्रकाशित रहता है, जबतक कि कुरंगनयना नारियों के चंचल नयनों के अंचय की वायु उनका ताड़न नहीं करती ।५०।

वचसि भवति सङ्गत्यागमुद्दिश्य वार्ता
श्रुतिमुखरमुखानां केवलं पण्डितानाम् ।
जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चीकलापं
कुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ॥५१॥

पण्डितजनों का स्त्री-संसर्ग से बचने का उपदेश केवल कहने भर के लिए ही है, अन्यथा मणि खचित कौंधनी पहनने वाली कुवलयनयनाओं के त्याग में कौन समर्थ है ?।५१।

स्वपरंप्रतारकोऽसौनिन्दतियोऽलीकपण्डितोयुवतीः ।
यस्मात्तपसोऽपिफलंस्वर्गस्तस्यापिफलंतथाप्सरसः ॥५२॥

युवतियों की निन्दा करने वाला पण्डित मिथ्या कह कर दूसरों को ठगता है, क्योंकि तपस्या के फलस्वरूप स्वर्ग में भी अप्सराओं का भोग प्राप्त होता है ।५२।

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥५३॥

अनेक शूरवीर मदमत्त हाथी को और सिंह को भी मारने में समर्थ हैं, परन्तु मैं बलपूर्वक कहता हूँ कि कामदेव का गर्व कोई विरला ही खण्डन कर सकता है ।५३।

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथयता नीलपक्ष्माण एते
यावल्लीलावतीनांन हृदिधृतिमुषोदृष्टिबाणाःपतन्ति ।।५४।।

मनुष्य सन्मार्गगामी, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, लज्जा और नम्रतायुक्त तभी तक रह सकता है, जब तक कि उसके हृदय में लीलामयी युवतियों के नयनबाण हृदय में प्रविष्ट नहीं होते ।५४।

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्ते यदङ्गना ।
तत्र प्रत्यूहमाधतुं ब्रह्मापि खलु कातर ।।५५।।

प्रेम के समारम्भ में जो स्त्री जिस कार्य को करने में प्रवृत्त होती है, उस कार्य से उसे ब्रह्मा भी नहीं हटा सकता ।५५।

तावन्महत्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता ।
यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हतः पञ्चेषुपावकः ।।५६।।

महत्व, पाण्डित्य, कुलीनता और विवेक का विचार तभी तक रहता है, जब तक कि हृदय कामाग्नि धधकती रहती है ।५६।

शास्त्रज्ञोऽपि प्रथितविनयोऽप्यात्मबोधोऽपि बाढं
संसारेऽस्मिन्भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम् ।
येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्घाटय
वामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव ।।५७।।

शास्त्रवेत्ता, विनयशील और आत्मज्ञानी तो अनेक परन्तु उनमें से कोई विरला ही इस लोक में सद्गति को प्राप्त होता है, क्योंकि कामिनी की कुटिल हुई भ्रूलता नरक के द्वार को खोलती है ।५७।

वृ.शः काणः खञ्जः श्रवण रहितः पुच्छविकलो
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ।
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपालार्पितगलः
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ।।५८।।

कृश, काना, लँगड़ा, बहरा, पूंछकटा, व्रण और पीव से युक्त, कृमियों से व्याप्त, क्षुधाकुल, जीर्ण अर्थात् वृद्ध और मृत्तिका पात्र में फँसी हुई ग्रीवा वाला कुत्ता कुतिया के पीछे लगा फिरता है। अहो, कामदेव मरे हुए को भी मारे बिना नहीं छोड़ता ।५८।

स्त्रीमुद्रां मकरध्वजस्य परमां सर्वार्थसम्पत्करीं
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो स्वर्गादिलोभेच्छया ।
ते तेनैव निहत्य निर्दतरं नग्नीकृता मुण्डिताः
केचित्पञ्चशिखीकृताश्चजटिलाःकापालिकाश्चापरे।५९।

सर्वार्थ को सम्पन्न करने वाली स्त्री रूपी मुद्रा को मूर्ख स्वर्गादि के लाभ की इच्छा से छोड़ देते हैं, उन्हें विरक्त न समझ कर यह समझो कि उसे कामदेव ने उसी प्रकार निर्दयता पूर्वक दण्ड दिया है, जिस प्रकार कि राजा किसी को नंगा करता, उसी का सिर मुड़वाता, किसी को पंचशिखी करता, किसी के जटा रखावा और किसी को खप्पर देकर भीख मँगवाता है ।५९।

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहोयदिभवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम्।।६०।।

वायु, जल और पत्तों का भक्षण करने वाले विश्वामित्र और पराशर प्रभृति महर्षि भी जब स्त्री का मुख पंकज देखते ही मोह को प्राप्त होगए, तव जो मनुष्य शालि चावल, घृत, दध, दही युक्त भोजन करते हैं उनकी इन्द्रियाँ वश में होजाँय तो इसमें भी आश्चर्य नहीं कि विन्ध्याचल ही समुद्र में तैरने लगे ।६०।

सिद्धाध्यासितकंदरे हरवृषस्कंधावगाढद्रुमे
गंगाधौतशिलातले हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि ।
कः कुर्वीत शिरः प्रणाममलिनं म्लानं मनस्वी जनो
यद्वित्रस्तकुरंगशावनयना न स्युः स्मरास्त्रं स्त्रियः।।६१।।

जिस हिमालय की कन्दिरा में सिद्धों का निवास रहता है, शिवजी का वाहन वृषभ वृक्षों से कन्धा रगड़ता है और शिलातल गंगाजल से धुलते रहते हैं, उसे छोड़कर कौन पुरुष दूसरों के सामने मन को म्लान करता, यदि लोक में स्त्रियाँ रूपी कामदेव का अस्त्र न होता ।।६१।।

संसार ! तव पर्यंतपदवी न दवीयसी ।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि ते मदिरेक्षणाः ।।६२।।

हे संसार ! यदि मध्य में मदिरेक्षणा रूप बाधा न होती तो तुझे पार करने का मार्ग कभी दुस्तर नहीं होता ।६२।

राजन्तृष्णाम्बुराशेर्नहि जगति गतः कश्चिदेवावसानं
को वार्थोऽर्थैः प्रभूतैःस्ववपुषि गलिते यौवने सानुरागे

गच्छाम: सद्म तावद्विकसितनयनेन्दीवरालोकिनीनां
यावच्चाक्रम्यरूपंझटितिनजरयालुप्यतेप्रेयसीनाम्।।६३।।

हे राजन् ! जगती में इस तृष्णारूपी समुद्र को कोई भी पार नहीं कर पाया, इसलिए धन की लिप्सा व्यथ ही है। फिर जब अनुरागमय यौवन देह में ही विलीन होजाता है, तब अधिक धन-संचय करने का भी क्या प्रयोजन है? कहीं वृद्धावस्था पकजनयनी प्रियतमा के सौन्दर्य को नष्ट न कर डाले, इसलिए मैं पहले ही घर जाता हूँ।६३।

रागस्यागारमेक नरकशतमहादु:खसम्प्राप्तिहेतु-
र्मोहस्योत्पत्ति बीजं जलधरपटलज्ञानताराधिपस्य।
कन्दर्पस्यैकमित्रं प्रकटितविविधस्पष्टदोषप्रबन्ध
लोकऽस्मिन्नह्यनर्थंव्रजकुलभवनंयौवनादन्यदस्ति।।६४।

जो राग आ आगार, सैकड़ों नरकों के महा दु:ख का हेतु, मोह की उत्पत्ति का बीज, ज्ञानरूपी चन्द्रमा को ढँकने वाला मेघ, कामदेव का अद्वितीय मित्र और विविध दोषों को प्रकट करने वाला यह यौवन है, उससे बढ़कर अन्य कोई अनर्थ लोक में नहीं है।६४।

शृङ्गारद्रुमनीरदे प्रचुरत: क्रीडारसस्रोतसि।
प्रद्युम्नांप्रेयबान्धवे चतुरतामुक्ताफलोदन्वति।
तन्वीनेत्रचकोरपाणविधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ
धन्य:कोऽपिनविक्रियांकलयतिप्राप्तेनवेयौवने।।६५।।

शृंगार रूपी वृक्षों का सिंचन करने वाला, काम क्रीडा के रस को प्रवाहित करने वाला, कामदेव का बन्धु, चतुरता रूपी

मोतियों का समुद्र, तन्वंगियों के नेत्र रूपी चकोरों का चन्द्रमा और सौन्दर्य लक्ष्मी का भण्डार यह नवयौवन जहाँ है, वहाँ इसे प्राप्त होने वाला जो पुरुष विकार को प्राप्त नहीं होता, वही धन्य है ।६५।

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादवर्धिनी ।
स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम् ॥६६॥

स्मरणमात्र से जो स्त्री सन्तप्त करने वाली, देखने से उन्माद बढ़ाने वाली, स्पर्श करने पर मोह में डालने वाली होती है, उसे प्रिया कैसे कहेंगे ।६६।

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा ।
चक्षुः पथादपगता विषादप्यतिरिच्यते ॥६७॥

जब तक वह नेत्रों के आगे है तभी तक अमृतमयी रहती है, परन्तु जब नेत्रों से ओझल होजाती है, तब अत्यन्त विषाद उत्पन्न करने वाली होती है ।६७।

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वानितम्बिनीम् ।
सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ॥६८॥

नितम्बिनी के अतिरिक्त न तो कोई अमृत है और न कोई विष ही है, क्योंकि अनुरक्त होने पर वही अमृतलता जैसी आनन्ददायिनी और विरक्त होने पर विष की वल्लरी होजाती है ।६८।

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
दोषाणां सन्निधानंकपटशतमयंक्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखंसर्वमायाकरण्डं
स्त्रीयन्त्रं केनसृष्टं विषममृतमयंप्राणिनांमोहपाशः॥६९॥

संशयों का आवर्त, अविनयों का भवन, साहसों का नगर, दोषों का भण्डार, सैकड़ों प्रकार के कपटों और अविश्वासों का क्षेत्र, स्वर्गद्वार का विघ्न, नरकपुर का द्वार और सब मायाओं की पिटारी रूप यह मनुष्यों को मोहपाश में डालने वाला रूपी यन्त्र किसने बनाया है ।६६।

सत्यत्वे न शशाङ्क एषं वदनोभूतो न चेन्दीवर-
द्वन्द्वं लोचनतां गतं न कनकैरप्यङ्गयष्टिः कृता ।
किन्त्वेवं कविभिः प्रतारितमनस्तत्त्वे विजानन्नपि
त्वङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशांमन्दोजनः सेवते ॥७०॥

सत्य तो यह है कि स्त्रियों का मुख चन्द्रमा नहीं है । इनके नेत्र कमल नहीं हो सकते और न इनका शरीर ही स्वर्ण का है । परन्तु कवियों के बहकाने पर मन्दमति पुरुष चर्म, माँस और अस्थियों से निर्मित स्त्री-देह के सेवन में तत्पर रहते हैं ।७०।

लीलावतीनां सहजा विलासा
स्त एव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति ।
रागा नलिन्या हि निसर्गसिद्ध
स्तत्रभ्रमत्येव मुधा षडङ्घ्रिः ॥७१॥

मूर्ख पुरुष लीलावती स्त्रियों के सहज हाव-भावों को अपने प्रति किये मान कर व्यर्थ ही मोहित होते हैं । देखो, कमलिनी में लालिमा स्वाभाविक होते हुए भी भौंरा उसे अपने लिए ही बनी हुई मानकर आसक्त हुआ व्यर्थ ही चक्कर काटता रहता है ।७१।

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ॥७२॥

स्त्रियाँ किसी एक से बातें करतीं, किसी दूसरे को विलास

पूर्वक देखती और हृदय में किसी तीसरे को ही चाहती हैं। इस प्रकार स्त्रियों का प्रिय है ही कौन ? ।७२।

मधु तिष्ठति वाचियोषितांहृदिहालाहलमेवकेवलम् ।
अत एवनिपीयतेऽधरोहृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ।।७३।।

स्त्रियों की वाणी में मधु और हृदय में केवल हलाहल विष भरा होता है, इसीलिए इसके अधरों का पान और हृदय का मुष्टिका से ताड़न किया जाता है ।७३।

अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षविषानलात्
प्रकृतिविषमाद्योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः ।
इतरफणिना दष्टाः शक्याश्चिकित्सितुमौषधै-
श्चतुरवनिताभोगिग्रस्तंत्यजन्तिहिमंत्रिणः ।।७४।।

हे मित्र ! कटाक्ष रूपी विषाग्नि के धारण कर्त्ता एवं विलास रूपी फणधर इस स्त्री रूपी सर्प से दूर रहो, क्योंकि अन्य सर्पों का काटा हुआ तो औषधोपचार से ठीक होजाता है, परन्तु स्त्री रूपी सर्प के काटे हुए को मन्त्रवेत्ता भी छोड़ देते हैं ।७४।

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण
स्त्रीसञ्ज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ ।
येनाचिरात्तदधरामिषलोलमर्त्य
मत्स्यान्विकृष्य पचतीत्यनुरागवह्नौ ।।७५।।

संसार रूपी समुद्र में कामदेव रूपी केवट ने जिस स्त्री रूपी जाल को फैला रखा है. उसमें उसके अधरामिष के लोलुप पुरुष रूपी मछलियों को पकड़ कर वह अनुरागाग्नि में पकाता रहता है ।७५।

कामीनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे ।
मा सञ्चर मनःपान्थ तत्रास्ते स्मरतस्करः ॥७६॥

हे मन रूपी पथिक ! तू कामिनियों के देह रूपी वन और वक्ष रूपी दुर्गम पर्वत में न जा, क्योंकि वहाँ कामदेव लुटेरा रहता है ।७६।

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेजस्विना भोगिना
नीलाब्जद्यु तिनाऽहिना वरमहं दष्टो न तच्चक्षु षा ।
दष्टे सन्तिचिकित्सकादिशिदिशिप्रायेण धर्मार्थिनो
मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्यनहिमेवैद्योनचाप्यौषधम् ॥७७॥

अति दीर्घ, चंचल एवं वक्र गति वाले, तेजस्वी और नील-कमल जैसे काले फणधर सर्प द्वारा काट लेना अच्छा है, परन्तु कामिनी के कटाक्ष से मारा जाना अच्छा नहीं । क्योंकि सर्प के काटे की चिकित्सा करने वाले तो सब दिशाओं में मिल सकते हैं, परन्तु स्त्री की दृष्टि से काटे हुए के लिए कोई वैद्य या औषधि नहीं है ।७७।

जात्यन्धाय च दुर्मु खाय चजराजोर्णाखिलाङ्गाय च
ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च ।
यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवश्रद्धया
पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्येतकः ॥७८।

जन्म से अन्धे, कुरूप, जरावस्था से शिथिल, ग्रामीण, दुष्कुल वाले या कुष्ठी पुरुषों को अल्प धन के लोभ में अपने मनोहर शरीर का समर्पण करने वाली और विवेक लता को काटने में तत्पर वेश्याओं से कौन विवेकशील पुरुष रमण करना चाहेगा ? ।७८।

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥७९॥

यह वेश्या सौन्दर्य रूपी ईंधन से प्रज्वलित हुई कामाग्नि की वह ज्वाला है, जिसमें कामी पुरुष अपने यौवन और धन की आहुति दिया करते हैं ।७६।

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि।
चारभटचोरचेटकविटनट निष्ठीवनशरावम् ॥८०॥

वेश्याओं का अधरपल्लव मनोहर होते हुए भी उसका चुम्बन कुलीन पुरुष नहीं किया करते, क्योंकि वह तो ठग, योद्धा, चोर, दास, नट या जारों के थूकने का पीकदान है ।८०।

धन्यास्त एव तरलायतलोचनानां
तारुण्यरूपधनपीनपयोधराणाम् ।
क्षामोदरो परिलसत्त्रिवलीलतानां
वष्ट्वाकृतिं विकृतिमेतिमनो न येषाम्॥८१॥

वे पुरुष धन्य हैं जिनका मन चपलनयना, पीनपयोधरा, क्षामोदरी, त्रिवली से सुशोभित तरुणी को देख कर भी जिनका मन विकृत नहीं होता ।८१।

बाले लाला मुकुलितममी सुन्दरा दृष्टिपाताः
किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते ।
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं काल्यमास्था वनान्त
क्षीणोमीहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः ॥८२॥

हे बाले ! तू अपनी अर्द्ध विकसित और सुन्दर दृष्टि को क्यों फेंक रही है ? इसका त्याग कर, तेरा यह परिश्रम अब व्यर्थ ही

है। क्योंकि अब मेरा लडकपन समाप्त होकर परिवर्तन आगया है। अब तो मोह को छोड़ कर और इस संसार-जाल को तृण-वत् मिथ्या समझ कर वन में जाना चाहता हूँ ।८२।

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल-
प्रभाचोर चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ।
गतो मोहोऽस्माकं स्मरशबरबाणव्यतिकर-
ज्ज्वलज्वालाःशान्तास्तदपि न वराकी विरमति ॥८३।

इस बाला का यह अभिप्राय समझ में नहीं आता कि यह अपने नीलपंकज जैसे नेत्रों का कटाक्ष मुझ पर क्यों किये जारही है? यदि वह मुझे प्रेमपात्र बनाने की इच्छा करती हो तो मेरा मोह और कामदेव रूपी भील के बाणों की अग्नि शान्त हो चुकी है, फिर भी यह नहीं मानती ।८३।

शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयःश्वेतातपत्रोज्वला
लक्ष्मीरित्यनुभूयते स्थिरमिवस्फीते शुभेकर्मणि ।
विच्छिन्न नितरामनङ्गकलहक्रीडात्रटत्तन्तुकं
मुक्ताजालमिव प्रयाति झटितिभ्रश्यद्दिशोदृश्यताम्॥८४॥

शुभ कर्म के उदय होने पर ही सुन्दर भवन, हावभाव वाली युवतियाँ और श्वेत छत्र से सुशोभित लक्ष्मी का ऐश्वर्य प्राप्त होता है। परन्तु पुण्य के समाप्त होजाने पर प्राप्त हुआ सम्पूर्ण ऐश्वर्य कलहक्रीडा से टूटे हुए मुक्ताहार के समान बिखर जाता है ।८४।

यदा योगाभ्यासव्यसनकृशयोरात्ममनसो-
रविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति यमिनस्तस्य किमु तैः।

प्रियाणामालापैरधरमधुभिर्वक्त्रविधुभिः
सनिश्वासामोदैः सकुचकलशाऽऽश्लेषसुरतैः ।।८५।।

जब योगाभ्यास के व्यसन में आत्मा और मन की अविच्छिन्न मैत्री स्फुरित रहती है, तब इन्द्रियजेता उस योगी पुरुष को स्त्रियों के मधुर वचन, निश्वास सुख, मुखामृत पान और वक्ष-स्पर्श आदि युक्त समागम से क्या प्रयोजन रहता है ? ।८५।

किं कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारितं
रे रे कोकिल कोमलं कलरवं किं त्वं वृथा वल्गसे।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ।।८६।।

कामदेव ! धनुष की टंकार से ही अपने बाणों को क्यों निष्फल करता है ? रे कोकिल ! तू व्यर्थ ही मधुर कलरव क्यों कर रहा है ? हे मुग्धे ! प्रेमरस से परिपूर्ण तेरे यह मधुर, चंचल कटाक्ष व्यर्थ ही हैं, क्योंकि अब तो मेरा चित्त भगवान् चन्द्रचूड के चरणों के ध्यानामृत में मग्न होरहा है ।८६।

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसञ्चारजनितं
तदा सर्वं नारीमयमिदमशेषं जगदभूत् ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनदृशां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते ।।८७।।

जब कामरूपी अन्धकार से मनुष्य अज्ञान में डूबा होता है, तब उसे यह सम्पूर्ण जगत् नारीमय ही दिखाई देता है। परन्तु, विवेक रूपी अञ्जन लगाने सम हुई दृष्टि के कारण उसे त्रिभुवन भी ब्रह्मरूप लक्षित होता है ।८७।

वैराग्ये सञ्चरत्येको नीतो भ्रमति चापरः ।
शृङ्गारे रमते कश्चिद् भुवि भेदाः परस्परम् ।।८८।।

कोई वैराग्य में संचरण करता है, कोई नीतिमार्ग में भ्रमता है और कोई शृंगार में रमता है। इस प्रकार लोक में भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के पुरुष हैं।८८।

यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तथा स्पृहा मनोज्ञेऽपि।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामाः सरोजिन्यः ।।८९।।

जिसे जो वस्तु प्रिय नहीं, उसे सुन्दर होने पर भी उसकी प्राप्ति की इच्छा नहीं होती। चन्द्रमा अत्यन्त सुन्दर है, फिर भी सरोजिनी उसकी कामना नहीं करती।८९।

अजितात्मसु सम्बद्धः समाधिकृतचापलः ।
भुजगकुटिलः स्तब्धो भ्रूविक्षेपः खलायते ।।९०।।

अजितात्मा पुरुषों से सम्बद्ध, समाधि द्वारा चपल, सर्प के समान कुटिल और अवसर देख कर स्तब्ध रहने वाला स्त्रियों का भ्रूविक्षेप दुष्ट पुरुषों का आचरण करता है।९०।

सुधामयोऽपि क्षयरोगशान्त्यै
नासाग्रमुक्ताफलकच्छलेन ।
अनङ्गसञ्जीवनदृष्टि शक्तिः
मुखामृतं ते पिबतीव चन्द्रः।।९१।।

हे कामिनि ! जो सुधामय चन्द्रमा कामदेव को जीवन-प्रदान में समर्थ है, वह रोग के शमनार्थ नासिका में लटकते हुए मुक्ता के मिस से तेरे अधरामृत का पान किया है।९१।

किं गतेन यदि सा न जीवति
प्राणिति प्रियतमा तथापि किम् ।
इत्युदीक्ष्य नवमेघमालिकां
न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥९२॥

यदि मेरी प्रियतमा विरह के सन्ताप के कारण जीवित न हो अथवा श्वासोच्छ्वास ले रही हो तो वहाँ जाने से क्या लाभ ? यह समझ कर नवीन मेघमाला को देखता हुआ पथिक विरक्त होकर अपने घर नहीं जाता ।९२।

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं
स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तनानाम् ।
इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणो
ह्यहितकरणदक्षैः पञ्चभिर्वञ्चितोऽस्मि ॥९३॥

यह मधुर गीत, यह नृत्य, यह रसामृत, यह सुगन्ध, यह स्तन-स्पर्श, इस प्रकार परमार्थ से भ्रष्ट करनी वाली पंचेन्द्रिय द्वारा अपने-अपने विषयजाल में फँसाया जाने से मैं ठगाई में आगया हूँ ।९३।

न गम्यो मंत्राणां न च भवति भैषज्यविषयो
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः ।
भ्रमावेशादंगे किमपि विदधद्भङ्गमसकृत्
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥९४॥

यह कामदेव रूपी उन्माद मन में मोह उत्पन्न कर मतिभ्रम उत्पन्न करता है, जिससे मनुष्य हाथ-पावों को पटकता और नेत्रों को एक स्थान पर स्थिर नहीं रहने देता । इस अपस्मार

को दूर करने में किसी मन्त्र, भैषज्य या शान्ति के विविध उपायों की भी गति नहीं है ।९४।

संसारऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभुवनद्वारसेवाकलङ्क-
व्यासङ्गव्यस्तधैर्यंकथममलधियो मानसं संविदध्युः ।
यद्येताःप्रोद्यदिन्दुद्युतिनिचयभृतोनस्युरम्भोजनेत्राः
प्रेङ्खत्काञ्चीकलापाःस्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्य।।९५।।

यदि इस संसार में उदीयमान चन्द्रमा की कान्ति जैसी कमल नयनी स्तनभार से नम्र मध्य अंग वाली कामिनियाँ न होतीं तो स्वच्छ विचार वाले पुरुष अधीर होकर दुष्ट राजाओं की द्वार-सेवा में लग कर क्यों कलंकित होते ? ।९५।

दिश वनहरिणेभ्यो वंशकाण्डच्छवीनां
कवलमुपलकोटिच्छिन्नमूलं कुशानाम् ।
शुकयुवतिकपोलापाण्डुताम्बूलवल्ली-
दलमरुणनखाग्रैः पाटितं वा वधूभ्यः ।।९६।।

हे पुरुषो ! वन के हरिणों के भक्षणार्थ हरे-हरे कुशों के ग्रास प्रदान करो अथवा अपनी प्रिया के लिए नखों से तोड़े गए शुक-युवतियों के समान पाण्डुवर्ण के ताम्बूल-पत्र प्रदान करो ।९६।

उन्मीलत्त्रिवलीतरङ्गनिलया प्रोत्तुङ्गपीनस्तन-
द्वन्द्वेनोद्यतचक्रवाकमिथुनावक्त्राम्बुजोद्भासिनी ।
कान्ताकारधरा नदीयमभितः क्रूराऽत्र नापेक्षते
संसारार्णवमज्जनं यदि ततो दूरेण संत्यज्यताम् ।।९७।।

यदि संसार-सागर में स्नान करने की इच्छा न होतो त्रिवली रूपी लहरों वाली उत्तुंगपीनस्तन रूपी चक्रवाक की जोड़ी और और मुख रूपी कमल वाली जीव-जन्तु युक्त स्त्री रूपी नदी का परित्याग करो।६७।

मुत्तोभकुम्भपनिणाहिनि कुंकुमार्द्रे
का:तापयोधरतटे रनिखेदखिन्नः ।
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
धन्य:क्षपांक्षपयतिक्षणलब्धनिद्रः ॥९८॥

जो पुरुष रतिश्रम की खिन्नता दूर करने के लिए अपने वक्षस्थल को मदोन्मत्त गजराज के गण्डस्थल जैसा विस्तीर्ण और कान्ता के पयोधरतट से स्पर्शित कर उसके बाहुपाश में बँधा हुआ क्षण भर भी निद्रा को प्राप्त करता है वह धन्य है।६८।

यदेतत्पूर्णेन्दुद्युतिहरमुदाराकृतिवरं
मुखाब्जं तन्वंग्या: किल वसति यत्राधरमधु ।
इद तावत्पाकद्रुमफलमिवातीव विरसं
व्यतीतेऽस्मिन्काले विषमिव भविष्यत्यसुखदम् ।।९९।।

स्त्री का अधरामृत से परिपूर्ण मुखकमल पूर्णचन्द्र की कान्ति का भी हरण करता है, परन्तु वही अधरामृत यौवनावस्था के ढलने पर मदार के फल के समान नीरस और विष के समान दु:ख देने वाला होता है।६९।

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रोणीभरेत्युत्सुकः
पीनोत्तुंगपयोधरेति सुमुखाम्भोजेति सुभ्रूरिति ।

दृष्ट्वा माद्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति जानन्नपि
प्रत्यक्षाशुचिपुत्रिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चेष्टितम्॥१००॥

नारी को अपवित्रता की पुतली जानता हुआ पुरुष भी उसे देखते ही आनन्दोन्माद में भर कर प्रेम करने लगता और उसे कमलनयना, स्थूल नितम्बिनी, पीनोत्तुंगपयोधरा तथा सुभ्रू आदि कह कर स्तुति करता रहता है ।१००।

❋ शृङ्गार शतक समाप्त ❋

वैराग्य शतक

मंगलाचरण

चूडोत्तंसितचारुचन्द्रकलिकाचञ्चच्छिखाभास्वरो
लीलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयोदशाग्रे स्फुरन् ।
अन्तः स्फूर्जदपारमोहतिमिरप्राग्भारमुच्चाटय-
श्चेतः सद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः ॥१॥

जिनकी जटाओं में चञ्चल और उज्वल चन्द्रकला शोभित है और जिन्होंने कामदेव रूपी पतंगे को लीलापूर्वक ही भस्म कर दिया, ऐसे कल्याण करने वालों में अग्रगण्य तथा भक्तों के अन्तःकरण के मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले तथा ज्ञान का प्रकाश करने वाले भगवान् शंकर योगियों के हृदय में निवास करते हैं ।१।

बोद्धार मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥२॥

विद्वान् अपनी विद्या के मात्सर्य से ग्रस्त हैं, ऐश्वर्य शाली पुरुष गर्व से दूषित हैं और अन्य व्यक्ति अज्ञान में डूबे हुए हैं, अतएव ज्ञानियों की श्रेष्ठ उक्तियाँ उनके मन में ही रही आने से समझ में नहीं आतीं ।२।

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ।

महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया
महान्तो जायन्तेव्यसनमिव दातुं विषयिणाम्॥३॥

संसार में जो चरित्र दिखाई देते हैं, वे कल्याणकारी नहीं हैं। पुण्य कर्मों का फल जो स्वर्गादि हैं, वे भी मुझे भयरूप प्रतीत होते हैं। महान् पुण्यों के द्वारा चिरकाल से संचित विषय भी अन्त में विषयीजनों के लिए दुःखरूप ही सिद्ध होते हैं।३।

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्घातवो
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः।
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः स्मशाने निशाः
प्राप्तःकाणवराटकोऽपिन मयातृष्णेऽधुनामञ्चमाम्॥४॥

हे तृष्णे ! अब तो मेरा पीछा छोड़। देख, तेरे जाल में पड़ कर मैंने धन की खोज में पृथिवी खोद डाली, रसायन-सिद्धि की इच्छा से पर्वत की बहुत-सी धातुएं भस्म कर डाली, रत्नों की कामना से नदियों के पति समुद्र को भी पार किया और मन्त्रों की सिद्धि के उद्देश्य से मन लगाकर अनेक रात्रियाँ श्मशान में बिताई तो भी एक कानी कौड़ी हाथ न लग सकी।४।

भ्रान्त देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं
त्यक्त्वाजातिकुलाभिमानमुचितंसेवाकृतानिष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकव-
तृष्णे दुर्गतिपापकर्मनिरते नाऽद्यापि सन्तुष्यसि॥५॥

मैंने अब तक बहुत-से देशों और विषम दुर्गों में भ्रमण किया तो भी कुछ फल न मिला। अपनी जाति और कुल के अभिमान को छोड़कर जो दूसरों की सेवा की वह भी व्यर्थ ही गई, अपने मान की चिन्ता न करते हुए पराये घर में काक के समान भोजन

किया, तो भी हे पापकर्म में निरत दुर्मति रूप तृष्णे ! तू सन्तुष्ट नहीं हो सकी ।५।

खलालापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरै-
निगृह्यान्तर्वाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा ।
कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितधियामञ्जलिरपि
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्तयसि माम् ॥६॥

दुष्टों की आराधना करते हुए मैंने उनकी कटु उक्तियों को सहन किया अश्रुओं को भीतर ही रोककर मैंने शून्य मन से हँसी का भाव रखा और मन को मार उनके समक्ष हाथ जोड़े खड़ा रहा तो फिर अब तू मुझे और क्या-क्या नाच नचाने की इच्छा करती है ? ।६।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ।
दृष्ट्वाजन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्चनोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयींप्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥७॥

सूर्य के उदय-अस्त से आयु नित्यप्रति क्षीण हो रही है, जगत्-व्यापार में प्रवृत्त अधिक कार्य भार के कारण जाता हुआ समय प्रतीत नहीं होता तथा जन्म, वृद्धावस्था और मरण का त्रास भी भयभीत नहीं करता। इस प्रकार यह जगत् मोहमयी, प्रमादमदिरा के पान द्वारा उन्मत्त होरहा है ।७।

दीना दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद् गेहिनी ।
याञ्चाभंगभयेन गद्गदलसत्त्रुट्यद्विलीनाक्षर
कोदेहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी जनः ॥८॥

भोजन के लिए रोते हुए दीन मुख वाले शिशुओं द्वारा खेंचे-खसोटे गए वस्त्रों वाली दुखिया गृहिणी न देखी जाती तो ऐसा धीर पुरुष कौन है जो अपनी उदरपूर्ति के लिए याचना के व्यर्थ होने की आशंका से रुँधे कण्ठ से 'मुझे कुछ दो' ऐसा कहने के लिए तैयार हो सके ।८।

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ।
शनैर्यष्ट्योत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने
अहो दृष्टः कायस्तदपि मरणापाय चकितः ॥९॥

भोग की इच्छा निवृत्त होगई, पुरुषत्व का अभिमान विगलित हो चुका, समान आयु वाले लोग स्वर्ग में चले गए, स्वयं भी लकड़ी के सहारे धीरे-धीरे चलने लगे और दृष्टि क्षीण हो गई, तब भी मरण की बात सुनकर भयभीत होना आश्चर्य की ही बात है ।९।

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं
व्यालानां, पशवस्तृणाङ्कुरभुजःसृष्टा स्थलीशायिनः।
संसारार्णवलङ्घनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्ति गुणाः॥१०॥

विधाता ने हिंसा-रहित एवं स्वयं प्राप्त वायु का भोजन सर्पों के लिए कल्पित किया, पशुओं के लिए तृणों के अंकुरों का भोजन और भूमि पर शयन निश्चित किया। परन्तु संसार-सागर को पार करने में समर्थ पुरुषों की ऐसी वृत्ति निश्चित की, जिसकी खोज में सम्पूर्ण गुणों के समाप्त होने पर भी उसकी प्राप्ति नहीं होती ।१०।

न ध्यातंपदमीश्वरस्यविधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नाऽऽलिंगितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ।।११।।

मैंने संसार-बन्धन के क्षेदनार्थ परमेश्वर के चरणों का विधिवत् ध्यान नहीं किया, न स्वर्गद्वार के कपाट खोलने के लिए धर्मरूपी कुँजी को ही प्राप्त किया और न नारी के पीनपयोधरों और सघन जघनों का आलिंगन ही किया, इस प्रकार मैं माता के यौवन रूपी वन के छेदनार्थ कुठार रूप में ही उत्पन्न हुआ हूँ ।११।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता,
स्तपो न तप्त वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याताः
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।।१२।।

हमने विषयों को नहीं भोगा, वरन् विषयों ने ही हमें भोग लिया । हमने तपस्या नहीं की, वरन् तपस्या ने ही हमें तप्त कर दिया । हमसे काल व्यतीत न हुआ वरन् हम ही व्यतीत होगए । तृष्णा जीर्ण न हुई, वरन् हम ही जीर्ण होगए ।१२।

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः
सोढा दुःसहशीतवातपवनक्लेशा न तप्तं तपः ।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमित प्राणैर्न शम्भोः पदं
तत्तत्कर्मकृतं यदैव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चितम्।।१३।।

हमने सहन तो किया, परन्तु क्षमा से, गृहोचित सुखों को त्याग तो दिया, परन्तु असन्तोष से, शीत, उष्ण और वायु के

दुःसह कष्ट भी सहे, परन्तु तप का कष्ट सहन नहीं किया और जो ध्यान किया वह भी धन का, शम्भु के चरणों का नहीं। इस प्रकार मैंने मुनियों द्वारा किये जाने वाले कर्म तो किये, परन्तु उनका फल मुनियों के कर्म जैसा नहीं मिला।१३।

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥१४॥

झुर्रियों से मुख भर गया, शिर के केश श्वेत होगए, शरीर शिथिलता को प्राप्त होगया, तो भी तृष्णा घटने की अपेक्षा तरुण ही होती जारही है।१४।

येनैवाम्बरखण्डेन संवीतो निशि चन्द्रमा.।
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥१५॥

आकाशखण्ड रूपी जिस वस्त्र को ओढ़ कर चन्द्रमा रात्रि में और सूर्य दिन में अपने शरीर को ढकता है, जब इन्हीं प्रकाशमानों की ऐसी दुर्गति है, तब हमारे दीन होने में आश्चर्य की कोई बात नहीं है।१५।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न मनो यत्स्वयममून्।
जन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
व्रस्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥१६॥

चिरकाल तक भोगे हुए विषय भी जब किसी दिन अवश्य छोड़ने होते हैं, तब यही उचित है कि उन्हें स्वयं ही त्याग दे। क्योंकि विषयों द्वारा छोड़े जाने पर अधिक सन्ताप होता है, जबकि स्वेच्छा से छोड़ देने पर अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है।१६।

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा
परिष्वंगे तुङ्गे प्रसरतितरां सा परिणतिः ।
जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपण-
स्तृषापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥१७॥

विवेक की उत्पत्ति से शान्ति का उदय होने पर तृष्णा शान्त हो सकती है, जबकि उसे अपने साथ लगाये रहने से बढ़ती ही जाती है। वृद्धावस्था में होने वाले विषयासक्ति को इन्द्र भी नहीं रोक पाता, वरन् वह स्वयं भी तृष्णा का पात्र होजाता है।१७।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ।
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कन्था
हा हा तथापि विषयान्न परित्यजन्ति ॥१८॥

भिक्षा का रूखा-सूखा एक बार भोजन, पृथिवी पर शयन अपना शरीर मात्र ही परिवार और सैकड़ों टुकड़ों के जोड़ से बनी हुई गुदड़ी मात्र वस्त्र, हा, हा ! ऐसी अवस्था में पड़ा हुआ मनुष्य भी विषयों का परित्याग नहीं करता ।१८।

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धिजघन-
मधो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥१९॥

माँस की ग्रन्थि रूपी स्तनों को स्वर्ण कलश की, खखार और थूक के पात्र मुख को चन्द्रमा की और स्रवते हुए मूत्र से भीगी

हुई जंघाओं को हाथी की सूँड की उपमा देकर कवियों ने स्त्रियों के निन्दनीय रूप का कैसा बढ़ा-चढ़ा कर बखान किया है ।१९।

अजानन्माहात्म्यं पततु शलभो दीपदहने
स मीनोऽप्यज्ञानाद् बडिशयुतमश्नातु पिशितम् ।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्न
मुञ्चामः कामानहह ! गहनो मोहमहिमा ॥२०॥

अग्नि के माहात्म्य से अनभिज्ञ पतंग दीपक की लौ में स्वयं को भस्म कर डालता और मछली भी फन्दे को न जानकर वंशी में लगे मांस को खाने के लिए लपकती है। इस प्रकार हम अपनी कामनाओं को विपत्ति का जटिल जाल को जंजाल युक्त जानते हुए भी उन्हें नहीं छोड़ना चाहते। अहो, मोह की महिमा कैसी गहन है ? ।२०।

फलमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं
शयनमवनिपृष्ठं वल्कले वाससी च ।
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहेदुर्जनानाम् ॥२१॥

जब हमें आहार के लिए फल, पान के लिए सुस्वादु जल, शयन के लिए भूमि, पहिनने के लिए वृक्षों की छाल यथेष्ट है, तब हम धनरूपी मधु के पान से भ्रान्त इन्द्रियों वाले दुर्जनों द्वारा किये जाने वाले तिरस्कार को क्यों सहन करें ? ।२१।

विपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां कए षमदज्वरः ॥२२॥

कोई ऐसे विपुल हृदय और धन्य पुरुष हुए, जिन्होंने इस लोक को बनाया, कोई ऐसे दानी हुए, जिन्होंने इस संसार को तुच्छ मान कर तृण के समान दान कर दिया, कोई ऐसे धीर पुरुष हैं जो चौदह भुवनों का पालन करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें कतिपय ग्रामों के प्राप्त होने पर ही गर्व रूपी ज्वर चढ़ आता है।२२।

त्वं राजा वयमप्युपासित गुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसिकवयोदिक्षुप्रतन्वन्तिनः ।
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तर
यद्यस्मासुपराङ्मुखोऽसिवयमप्येकान्ततोनिस्पृहाः।।२३।।

यदि तुम्हें राजा होने का गर्व है तो हमें भी गुरुसेवा से उपलब्ध ज्ञान का कम अभिमान नहीं है। यदि तुम ऐश्वर्य से प्रसिद्ध हो तो हमारा यश भी कवियों न दशों दिशाओं में फैला रखा है। इस प्रकार हे राजन् ! तुममें-हममें कोई अन्तर न होने पर भी हमसे मुख फेरते हो तो हम भी तुम से निस्पृह ही रहते हैं।२३।

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै-
र्भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभुजाम् ।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो
विषादे कर्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुद्रम् ।।२४।।

सैकड़ों ही राजागण जिसे अपनी समझ कर संसार से चले गए, परन्तु यह किसी के द्वारा भी भोगी नहीं गई ! ऐसी पृथिवी को पाकर गर्व करना क्या उचित है ? इसके अंश के भी अंश को प्राप्त करके अपने को पृथिवीपति मानना आश्चर्य का ही

विषय है,क्योंकि जहाँ खेद करना चाहिए, वहाँ मूर्ख पुरुष आनन्द ही समझा करते हैं ।२४।

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययंनन्वणुः
भोगीकृत्य स एव संयुगशतै राज्ञां गणैर्भु ज्यते ।
नो दद्यु र्ददतेऽथवा किमपि ते क्षुद्रा दरिद्रा भृशं
धिग्धिक्तान्पुरुषाधमान्धनकणान्वाञ्छन्तितेभ्योऽपिये।२५।

यह पृथिवी जल की रेखा से घिरा एक छोटा-सा मृत्तिका-पिण्ड है, जिसके कुछ-कुछ अंशों पर अनेक राजागण युद्ध करके स्वामित्व स्थापित करते हुए राज्य करते हैं। ऐसे क्षुद्र एवं दरिद्र राजाओं को दानी कह कर दान प्राप्त करने की आशा वाला धनाकांक्षी अधम पुरुषों को धिक्कार है ।२५।

न बिटा न नटा न गायका न परद्रोहनिबद्धबुद्धय. ।
नृपसद्मनिनामकेवयंकुचभारोन्नमिता न योषितः ।।२६।।

न हम विट (लम्पट) हैं, न नट हैं, न गायक हैं, न हम में परद्रोह की ही बुद्धि है और न हम कुचभार नम्रा कामिनी ही हैं, फिर तुम्हारी राजसभा से हमारा क्या प्रयोजन है ? ।२६।

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्धयै विषयिणाम् ।
इदानीं सम्प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा-
नहो कष्टं साऽपि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ।।२७।।

पूर्व काल में तो विद्वता क्लेश नष्ट करने के लिए होती थी, फिर कुछ कालोपरान्त विषयी पुरुषों की विषय-सुख सिद्धि की

हेतु होगई और अब तो वह शास्त्र विमुख राजाओं के कारण अधोगति को प्राप्त होती गई ।२७।

स जातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलङ्कारविधये ।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना
नमद्भिः कः पुन्सामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥२८॥

पहले कभी ऐसे पुरुष भी हुए, जिनके शुभ्र कपाल को शिवजी ने अपने अलंकार रूप में मस्तक पर धारण किया था, परन्तु अब तो अपनी प्राण-रक्षा मात्र करके ही मनुष्य अत्यन्त अभिमानी होगए है ।२८।

अर्थानामीशिषेत्वंवयमपि च गिरामीश्महेयवदर्थं
शूरस्त्व वादिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं नः ।
सेवन्तेत्वां धनाढ्यामतिमलहृतयेमामपिश्रोतुकामा
मय्यप्यास्थानचेत्तत्वयिममसुतरामेषराजन्गतोऽस्मि।२९।

हे राजन् ! यदि तुम धनों के ईश्वर हो तो हम भी वाणी के ईश्वर हैं । तुम युद्ध करने में शूर हो तो हम वादियों का दर्पज्वर नष्ट करने में चतुर है । तुम्हें धनाढ्य पुरुष सेवन करते हैं तो मति का मल दूर करने के लिए शास्त्र सुनने के इच्छुक मनुष्य हमें सेवन करते हैं । ऐसी समता होने पर भी तुम्हारी श्रद्धा हम पर नहीं है तो हमारी आस्था भी तुममें नहीं रही, इसलिए हम जाते हैं ।२९।

मानेम्लायिनिखण्डिते च वसुनि व्यर्थंप्रायतेऽतिथिनि
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नेष्टे शनैर्यौवने ।

युक्त केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नु कन्यापयः
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरतटोकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥३०॥

सम्मान के नष्ट होने, धन का क्षय होने, अतिथियों के विमुख लौटने, बांधवों के नष्ट होने, परिजनों के चले जाने और शनैः शनै. यौवन के नष्ट होने पर बुद्धिमानों को उचित है कि वे गंगा के जलकणों से पवित्र हुई हिमालय की किसी गुफा में निवास करें।३०।

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदय लेशकलिलम्।
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणो
विमुक्तः सङ्कल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥३१॥

हे चित्त! तू प्रतिदिन पराये चित्त को अनेक प्रकार से प्रसन्न करने के लिए क्लेश रूपी पंक में क्यों फँसता है? जब तू स्वयं में ही प्रसन्न होकर चिन्तामणि के गुणों को ग्रहण करेगा, तब क्या तेरे इच्छा की पूर्ति न होगी।३१।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुविनृणांशम्भोःपदंनिर्भयम्॥३२॥

भोगी को रोगभय, कुलीन को च्युति भय, धनिक को राज-भय, मानी को दैन्यभय, बली (अथवा सेना) को शत्रुभय, रूप को जराभय, शास्त्र को वादभय, गुण को खलभय और काया को यमभय होता है। इस प्रकार मनुष्यों को लोक में सभी वस्तु भय से व्याप्त हैं, केवल शिवजी के चरण ही निर्भय पद हैं।३२।

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रपयसां
कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ।
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमद निः शङ्कमनसां
कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥३३॥

कमलिनी पत्र पर स्थित जल कण के समान तुरन्त नष्ट होने वाले प्राणों के लिए कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का किंचित् भी विचार न करके हमने क्या नहीं किया ? धनमद में मत्त धनाढ्यों के आगे अपनी प्रशसा स्वयं करने के पाप से भो नहीं चूके ।३३।

सा रम्या नगरी महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।
उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताःकथाः
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः॥३४॥

वह सुरम्य नगरी, वह महान् नृपति, वह अधीनस्थ राजाओं का चक्र, उसके पार्श्व में स्थित विद्वज्जन, अत्यन्त सुन्दरी कामिनियाँ, राजपुत्रों का समूह, चतुर बन्दीजन और सभी आदर्श कथाएँ काल के कारण नाम मात्र के लिए रह गईं, उस काल को नमस्कार है ।३४।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः ।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥३५॥

हमको जन्म देने वाले माता-पिता को गये हुए बहुत काल व्यतीत होगया, हमारे सहपाठियों का भी नाम शेष रह गया है

और हम भी नदी तट पर बालू में उत्पन्न वृक्ष के समान दिनों-दिन मृत्यु के निकट पहुँचते जारहे हैं ।३५।

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु वहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते ।
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन्द्वाविवाक्षौ
कालः काल्या भवनफलके क्रीड्डति प्राथूशारैः ॥३६॥

जिस किसी घर में अनेक थे, वहाँ एक रह गया और इस प्रकार दिवस-रात्रि रूपी दो पासों को फेंकने वाला काल पुरुष काली के साथ प्राण रूपी पासा लेकर संसार रूपी चौसर का खेल खेलता है ।३६।

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं
गुणोदारान्दारानुत परिचरामः सविनयम् ।
पिवामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान्
न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥३७॥

हम नहीं जानते कि हमें क्षणभंगुर जीवन में क्या करना चाहिए ? तपस्या में रत रहते हुए गङ्गातट पर निवास अथवा गुणों के कारण उदार हुई अपनी पत्नी को सविनय परिचर्या? या शास्त्रों का श्रवण करें अथवा काव्यरूपी सुधारस का पान ?।३७।

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वांगमंगे मदीये ॥३८॥

क्या वे मेरे सुदिन होंगे जब मैं गंगा के तीर पर हिमगिरि शिला पर पद्मासन लगाकर ब्रह्मध्यान करता हुआ योगनिद्रा

में मग्न होजाऊँगा और तब वृद्ध हरिण भी निःशंक होकर अपने शरीर की खुजलाहट दूर करने के लिए उसे मेरे शरीर से रगड़ा करेंगे।३८।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः।
भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यादिवचसा
कदा स्यामानन्दोद्गतबहुलबाष्पाप्लुतदृशः ॥३९॥

ज्योत्स्नाभरी सुनसान रात्रि में गंगा के रेतीले तट पर सुख से बैठा हुआ मैं भव के भोगों से उद्विग्न रहता हुआ 'शिव-शिव' का जप करता हुआ अपने नेत्रों को अश्रुपूर्ण करने में कब सफल हूँगा? ।३९।

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद्
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥४०॥

शिव ही मेरे इष्टदेव हैं, नदियों मे गंगा ही नदी है, पर्वत की गुहा ही मेरा घर, दिशाएँ वस्त्र, काल ही मित्र और अदैन्य मेरा व्रत है अधिक क्या कहूँ वटवृक्ष ही मेरे लिए दयिता स्वरूप है।४०।

आशानामनदीमनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याःपारगता विशुद्धमनसो नन्दन्तियोगीश्वराः॥१४॥

आशा नाम की नदी में मनोरथ रूपी जल और तृष्णा रूपी तरंग है, राग ही उसमें ग्राह हैं और वितर्क अर्थात् अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थों के निर्णय की विचारधारा रूपी पक्षी वृक्ष पर बैठे हैं और वह धारा धैर्य रूपी वृक्ष को गिराती हैं। मोह रूपी गहन भँवर और चिन्ता तट है। शुद्ध मन वाले योगीश्वर ही ऐसी नदी से पार होने में समर्थ हैं।४१।

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृ-
ङ् नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा ।
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढगूढाभिमान-
क्षीबस्यान्तःकरणकरिणःसंयमानायलीलाम् ।।४२।।

हे तात ! संसार की प्रवृत्ति के आरम्भ काल से मैंने त्रिलोकी मैं खोज करली, परन्तु ऐसा कोई भी देखने-सुनने में नहीं आया जो विषय रूपी हथिनी के अति गूढ़ अभिमान से उन्मत्त हुए अन्तःकरण रूपी हाथी को संयम रूपी बन्धन में बाँध सके।४२।

विद्यानाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिताः ।
आलोलायतलोचना युवतयःस्वप्नेऽपिनीलिङ्गताः
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेयते ।।४३।।

हमने कलंक-रहित विद्या नहीं पढ़ी, धन भी नहीं कमाया, माता पिता की सेवा भी नहीं की और चंचलनयना युवति का आलिंगन स्वप्न में भी नहीं किया। हमने तो केवल पराये अन्न के लोभ में ही अपना जीवन कौए के समान व्यतीत कर दिया।४३।

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणापरिणामां विधिगतिम् ।
वय पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणा-
स्त्रियामा नेष्यामो हरचरणचिन्तैकशरणाः ॥४४॥

अपना सर्वस्व वितरण कर, करुणापूर्ण हृदय से संसार की विषम परिणाम वाली दैवगति का स्मरण करते हुए पवित्र वन में भगवान् शिव की चरण-शरण लेते हुए शरद् की चाँदनी रात्रि को कब बितायेंगे ? ।४४।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः
सम इव परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥४५॥

राजन् ! हम वृक्ष की छाल के वल्कल वस्त्र से ही सन्तुष्ट हैं और तुम श्रेष्ठ वस्त्रों में सन्तुष्ट रहते हो । इस प्रकार हमारे-तुम्हारे सन्तोष में अन्तर न होने से विशेष भेद भी नहीं है । परन्तु जिसकी तृष्णा विशाल है वही पुरुष दरिद्र होता है, क्यों कि मन असन्तुष्ट हो तो कौन धनवान् और कौन दरिद्र है ? ।४५।

यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं
सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ।
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृश-
न्नजाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥४६॥

स्वच्छन्द विहार, दीनता-रहित भोजन, सत्पुरुषों का संग, मन को शान्ति देने वाले एवं उपशम व्रत रूपी फल वाले शास्त्रों

का श्रवण, सांसारिक भावों में मन की प्रवृत्ति की मन्दता आदि का चिरकाल तक विचार-विमर्श करने पर भी समझ में नहीं आया कि यह किस तपस्या का फल है ।४६।

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं
विस्तीर्णवस्त्रमाशादशकमचपलंतल्पमस्वल्पमुर्वी ।
येषांनिःसङ्गताङ्गीकरणपरिणतस्वात्मसंतोषिणस्ते
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराकर्मनिर्मूलयन्ति।।४७।।

हाथ ही पवित्र पात्र, भ्रमण करने पर प्राप्त भिक्षा ही अक्षय अन्न, विस्तीर्ण दिशाएँ वस्त्र, वृहद् पृथिवी शय्या, संसर्गों से शून्य अन्तःकरण की वृत्ति और अपने आत्मा में ही सन्तुष्टता तथा दीनता के भावों का त्याग, ऐसे जिन पुरुषों ने अपने कर्मों को समूल नष्ट कर लिया, वे धन्य हैं ।४७।

दुराराध्याश्चामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो
वयं तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः ।
जरा देहं मृत्युर्हरति दयितं जीवितमिदं
सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः ।।४८।।

अश्व की गति के समान चलायमान चित्त वाले राजाओं की आराधना कठिन है । परन्तु हमारी इच्छाओं की स्थूलता के कारण उच्चपद प्राप्ति की लालसा रही आती है । वृद्धावस्था देह का और मृत्यु जीवन का हरण करती है । अतः हे सखे ! जगत् में विवेकी पुरुष के लिए तप के अतिरिक्त कोई अन्य श्रेयस्कर मार्ग नहीं है ।४८।

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला
आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलानाम्बुवद्भंगुरम् ।

लीला यौवनलालसास्तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं
योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः ॥५९॥

संसार के भोग चंचला विद्युत् के समान अस्थिर हैं, आयु भी वायु के द्वारा विघटित किये गए जलवर्षक मेघों के समान क्षणभंगुर है, यौवन की लालसा भी स्थिर नहीं है। अतः हे बुधजन ! धैर्य से प्राप्त एकाग्रता द्वारा सुलभ समाधि सिद्धि का प्रयत्न करो।४६।

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालिंकपालिं
ह्यादाय न्यायगर्भद्विजहुतहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम् ।
द्वारं द्वारं प्रविष्टो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो
मानी प्राणैःस धन्यो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ॥५०॥

क्षुधाकुल होकर जो अपनी उदर-कन्दरा को भरने के लिए श्वेत वस्त्रों से ढके ठीकरे को लेकर किसी पवित्र ग्राम या वन में जाकर सतत किये जाने वाले यज्ञों के धुएं से काले पड़े हुए किवाड़ों वाले द्वार-द्वार पर भिक्षा-याचना करें परन्तु समान कुल वालों के द्वार पर दीन होकर भिक्षा न माँगे, वह धन्य है।५०।

चाण्डालःकिमयं द्विजातिरथवाशूद्रोऽथकिं तापसः
किंवातत्वविवेकपेशलमतिर्योगीश्वराकोऽपिकिम् ।
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनै-
र्नक्रुद्धाःपथिनैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥५१॥

क्या यह चाण्डाल है या ब्राह्मण है? शूद्र है अथवा तपस्वी ? अथवा तत्वज्ञान में कुशल कोई योगीश्वर है ? इस भाँति अनेक प्रकार के संशय से युक्त तर्क-वितर्क करते हुए मनुष्यों द्वारा छेड़-

छाड़ करने पर भी योगी न तो क्रुद्ध होता है और न हर्षित ही, वरन् सावधान चित्त रहता है।५१।

विरमत बुधाः योषित्सङ्गात्सुखात्क्षणभंगुरा-
त्कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ।
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं
शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ।।५२।।

हे बुधजन ! क्षणभंगुर सख वाले स्त्री-संग से चित्त को हटा कर, करुणा से मैत्री और प्रज्ञा रूपी वधुओं से समागम करो। क्योंकि अन्त में नरक को प्राप्त होने पर हारों से अलंकृत सघन वक्षस्थल या शब्दायमान मणि-मेखला से समन्वित कटि सहायक नहीं हो सकती।५२।

मातर्लक्ष्मिभजस्वकञ्चिदपरं मत्कांक्षिणामास्मभू-
र्भोगेषु स्पृहयालवो नहि वयं का निःस्पृहाणीमसि ।
सद्यः स्यूतपलाशपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृतै-
र्भिक्षासक्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ।।५३।।

हे लक्ष्मी माता ! अब तू मेरी आशा छोड़ कर अन्य किसी का भजन कर, क्योंकि विषयों के भोग में मेरी किंचित् भी रुचि नहीं रही। अब तो मैं निस्पृही रह कर पलाश के हरित् पत्रों के दोने में रखे भिक्षा से प्राप्त सत्तू के द्वारा ही जीवन यापन करूँगा।५३।

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः ।
किं जातमधुना मित्र यूयं यूय वयं वयम् ।।५४।।

हे मित्र ! पहले हम समझते थे कि तुम हो वह हम और हम हैं वह तुम हो अर्थात् हम-तुम दोनों एक ही हैं। परन्तु अब क्या हुआ कि तुम तुम ही होगए और हम हम ही रह गए।५४।

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसयते श्रव्यं न गेयादिकं
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीयते ।
किं भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपांकुर-
च्छायाचञ्चलमाकलय्यसकलं सन्तो वनान्तं गताः।।५५।।

क्या सन्तजनों के रहने के लिए रम्य राजभवन न थे ? क्या श्रव्य संगीत और गीतादि न थे ? क्या प्राणप्रिया नारियों का समागम सुख उन्हें प्रिय न था ? परन्तु वे इस जगत् को वायु से हिलती हुई दीपक की लौ की छाया के समान चंचल समझ कर निर्जन वन में चले गए ।५५।

किंकन्दाःकन्दरेभ्यःप्रलयमुपगतानिर्झरावागिरिभ्यः
प्रध्वस्तावातरुभ्यःसरसफलभृतोवल्कसिन्यश्चशाखाः
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रयाणां खलानां
दुःखोपात्ताल्पवित्तस्मयपवनवशानर्तितभ्रूलनानि ।।५६।।

क्या कन्दराओं से कन्दमूलादि और पर्वतीय झरने नष्ट हो गए या सरस फल और वल्कल से युक्त वृक्ष की शाखाएँ क्षीण होगई ? जिनके कारण याचकों को अविनीत दुष्टों के मुख देखने पड़ते हैं ।५६।

गङ्गातरङ्गकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ।
स्थानानिकिं हिमवतःप्रलयं गतानि
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः ।।५७।।

गंगाजी की तरंगों से ठंडे हुए जलकणों से शीतल और बैठे हुए विद्याधरों वाले शिलातल युक्त हिमालय के स्थान क्या

लुप्त होगए हैं, जो अपमान सहन करते हुए मनुष्य दूसरों के दिये अन्न में रुचि रखा करते हैं।५७।

यदा मेरुःश्रीमान्निपतति युगान्ताग्निहिहतः
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरमकरग्राहनिलयाः।
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता
शरीरे का वार्त्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥५८॥

जब श्रीसम्पन्न सुमेरु पर्वत प्रलय काल की अग्नि से दग्ध होकर गिर जाता है, बड़े-बड़े मकर और ग्राहों का आश्रय स्थान समुद्र शुष्क होजाता है तथा पर्वतों से धारित धरती लीन होजाती है, तब हाथी के कर्णाग्र के समान चपल इस शरीर का ही क्या कहना ?।५८।

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥५९॥

हे शम्भो ! मैं एकाकी, निस्पृह, शान्त, करपात्री, दिगम्बर और कर्मफल को निर्मूल करने में समर्थ कब हूँगा ?।५९।

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्।
सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पस्थितास्तनुभृतां तनवस्ततः किम् ॥६०॥

सभी कामनाओं के देने वाली लक्ष्मी के प्राप्त होने से क्या होता है ? शत्रुओं को पददलित करने या प्रेमियों को धनादि से सम्मानित होने अथवा कल्प पर्यन्त जीवित रहने से भी क्या लाभ है ?।६०।

जीर्णा कन्था ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं
मेका भार्या ततः किं बहुहयकरिभिः कोटिसंख्यास्ततः किं।
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरान्ते ततः किं
व्यक्तज्योतिर्नवान्तर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किं।६१।

कन्था के जीर्ण होने से क्या ? श्वेत रेशमी वस्त्र के धारण से, स्त्री के एक होने से, करोड़ों हाथी-घोड़ों वाले ऐश्वर्य से या मध्याह्न में श्रेष्ठ भोजन अथवा सायंकाल में निकृष्ट भोजन प्राप्त होने से भी क्या ? अर्थात् यदि भवभय नाशक ब्रह्मतेज धारण न किया तो उन सबके उत्कृष्ट होने से ही क्या लाभ है ? ।६१।

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता
वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम् ।।६२।।

शिव की भक्ति, हृदय में मरण और जन्म के भय, बन्धुओं के स्नेह, काम-विकार तथा संसर्ग दोष से रहित निर्जन वन में निवास हो तो इससे अधिक परम अर्थ और वैराग्य ही कौन-सा है ? ।६२।

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि
तद् ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः।
यस्यानुषङ्गिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ।।६३।।

इसलिए अनन्त, अजर, परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करो, उससे भिन्न चिन्तन से क्या लाभ है ? क्योंकि कृपणों के

अधीन रहने वाले भुवनों का आधिपत्य, भोग आदि सब उस ब्रह्म के ही आश्रित हैं ।६३।

पातालमाविशसि यासिनभोविलंध्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन ।
भ्रान्त्यापिजातुविमलं कथमात्मनानं
तद् ब्रह्म न स्मरसि निर्वृ तिमेषि येन ।।६४।।

अरे मन ! तू अपनी चंचलता के कारण कभी पाताल में जाता है तो कभी आकाश का उल्लंघन करता है, और कभी सब दिशाओं में घूमता है। परन्तु कभी भूल कर भी उस विमल आत्मा रूप ब्रह्म का चिन्तन नहीं करता जिससे सब दुःखों की निवृत्ति हो सके ।६४।

रात्रिःसैव पुनःस एव दिवसो मत्वाऽबुधाजन्तवो
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ।
व्यापारैः पुनरुक्तभूतविषयैरेवंविधेनाऽमुना
संसारेण कदथिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे ।।६५।।

वही रात्रि और वही दिवस होते हैं, यह सभी प्राणी जानते हैं, फिर भी प्रारब्ध कर्मों को पूर्ण करने के लिए उन्हीं व्यापारों को पुनः करते हैं। इस प्रकार के संसार से हम निन्दा के पात्र होकर भी अज्ञानवश लज्जित नहीं होते ।६५।

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदितः
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ।।६६।।

जिसकी रम्य शैय्या भूमि, विपुल तकिया भुजा, आकाश वितान, अनुकूल वायु पंखा, चन्द्रमा ही प्रकाशमान दीपक और विरक्ति रूपी स्त्री का संग है, वही मुनि ऐश्वर्यवान् राजा के समान सुख-शान्ति पूर्वक शयन करता है ।६६।

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने
तल्लाब्ध्वाशनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः ।
भोगःकोऽपि स एक एव परमो नित्योदितोजृम्भते
यत्स्वादाद्विरसाभवन्तिविषयास्त्रैलौक्यराज्यादयः॥६७॥

रे मन ! जिस ब्रह्म के महाशासन के समक्ष त्रैलोक्य का आधिपत्य भी रसहीन प्रतीत होता है, उसकी प्राप्ति में ही लग, भोजन, वसन, मान रूपी भोग से प्रीति न लगा। उसके समान अन्य भोग कौन-सा है जो नित्य प्रकाशित है तथा जिसके स्वाद के आगे त्रैलोक्य के राज्यादि भी रसहीन सिद्ध होते हैं ।६७।

किं वैदैःस्मृतिभिः पुराणपठनैःशास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानल
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥६८॥

वेद, स्मृति, पुराण और शास्त्रों के अत्यन्त विस्तार में जाने का क्या प्रयोजन ? स्वर्ग रूपी कुटी में निवास रूप फल के देने वाले यज्ञादि कर्मों से क्या लाभ ? भव-बन्धन रूपी दुःख के निवारणार्थ उत्पन्न कालानल के समान आत्मानन्द रूप पद प्रवेश के अतिरिक्त अन्य सभी वृत्तियाँ व्यापार रूप हैं ।६८।

आयुःकल्लोललोलकतिपयदिवसस्थायिनीयौवनश्री-
रर्थाः संकल्पकल्पाघनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूराः।

कण्ठाश्लोषोद्‌गूढं तदपिचनचिरंयत्प्रियाभिःप्रणीतं
ब्रह्मण्यायुक्तचिताभवत भवभयाम्भोधिपारंतरीतुम्॥६९॥

आयु जल की तरंगों के समान चंचल, यौवन की शोभा कुछ दिनों तक सीमित. धन संकल्प-कल्पना के समान अस्थिर, वासना वर्षाऋतु के विद्युत-विलास के समान चपल और प्रियाओं का कण्ठ मिलन युक्त आलिंगन रूपी सुख भी अस्थायी है। अत: भवभय रूपी सागर से पार जाने के लिए ब्रह्म में आसक्त होना श्रेयस्कर है।६९।

ब्रह्माण्डं मण्डलीमात्रं न लोभाय मनस्विनः।
शफरीस्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धता न नु जायते॥७०॥

विम्व फल के समान यह ब्रह्माण्ड मन स्वयों का मन लुभाने में उतना ही असमर्थ है, जितनी समुद्र को क्षुब्ध करने में मछलियों की उछल-कूद व्यर्थ रहती है।७०।

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि।
इदानीमस्माकंपटुतरविवेकाञ्जनजुषां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते॥७१॥

यौवनावस्था में कामदेव रूपी तिमिर (नेत्र रोग) के कारण विवेक न रहने से सम्पूर्ण जगत् स्त्रीमय जान पड़ता था, परन्तु अब उस तिमिर रोग को दूर करने में सशक्त विवेक रूपी अंजन से हमारी दृष्टि त्रिभुवन को ही ब्रह्मरूप में देखती है।७१।

रम्याश्चन्दमरीचयस्तृणवती रम्यावनान्तस्थली
रम्यंसाधुसमागमोद्भवसुखं काव्येषु रम्याःकथाः।

कोपोपाहितवाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियायामुखं
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुनः ॥७२॥

चन्द्रमा की रम्य किरणें, हरित् तृणों से सुरम्य हुई वनस्थली, सत्संग से उत्पन्न रम्य सुख एवं काव्यों की रमणीक कथाएँ और प्रणयकोप से उत्पन्न अश्रुओं से रम्य हुआ प्रिया का मुख, यह सब रम्य होते हुए भी संसार की अनित्यता का ज्ञान होने पर चित्त पुनः उनमें नहीं रमता ।७२।

भिक्षाशी जनमध्यसङ्गरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा
दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः
रथ्याकीर्णविशीर्णजीर्णवसनः सम्प्राप्तकन्थाधरो
निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखभोगैकबद्धस्पृहः ॥७३॥

भिक्षा से जीवनयात्रा चलाने वाले, लोगों के संग से विमुख, इच्छानुसार चेष्टा में सदा स्थित, दान-अदान से विरक्त, मार्ग में फेंके गये जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को पहनने वाले, कन्था का ही आसन बनाकर बैठने वाले, मान और अहंकार से रहित एवं शान्तिसुख के भोग में चित्त लगाने वाले विरले ही होते हैं ।७३।

मातर्मेदिनि तात मारुत सखतेजःसुबन्धोजल
भ्रातर्व्योम निबद्धएषभवतामन्त्यःप्रणामाञ्जलिः।
युष्मत्सङ्गवशोपजातसुकृतोद्रकस्फुरन्निर्मल-
ज्ञानापास्तसमस्त मोह महिमालीनेपरब्रह्मणि ॥७४॥

हे मेदिनी माता ! हे वायु पिता, हे तेज मित्र, हे जल सुबन्धो ! हे आकाश भ्रातृ ! मैं कर जोड़ कर प्रणाम करता हूँ। आपके संग से उत्पन्न पुण्य के आधिक्य से प्रकाशित ज्ञान द्वारा मोह महिमा का नाश करता पर ब्रह्म में लीन होरहा हूँ।७४।

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृह यावच्चदूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेवविदुषाकार्यःप्रयत्नोमहान्
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखनन प्रत्युद्यमः कीदृशः।।७५।।

जब तक काया स्वस्थ है और वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों के करने में सशक्त हैं तथा जब तक आयु नष्ट नहीं होती, तव तक विद्वान् पुरुष को अपने श्रेय के लिए प्रयत्न-शील रहे। घर जलने पर कुआ खोदने से क्या लाभ ? ।७५।

नाभ्यस्ताभुविवादिवृन्ददमनीविद्याविनीतोचिता
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः।
कान्ताकोमलपल्लवाधरसः पीतो न चन्द्रोदये
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालयेदीपवत् ।।७६।।

मैंने न तो विरोधियों के मुख को दमन करने वाली विद्या का अध्ययन किया, न तलवार की नोंक से हाथी की पीठ को विदीर्ण करके अपना यश ही स्वर्ग तक फैलाया और न चन्द्रोदय काल में कान्ता के कोमल अधरों का ही पान किया। इस प्रकार मेरा तो तारुण्य भी शून्य गृह में जलते हुए दीप के समान निष्फल ही गया ।७६।

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशन
केषाञ्चिदेतन्मदमानकारणम्।
स्थानंविविक्तंयमिनांविमुक्तये
कामातुराणामपि कामकारणम्।।७७।।

ज्ञान से सज्जनों का मान मदादि नष्ट होते और दुर्जन के मान-मदादि की वृद्धि होती है। जैसे एकान्त स्थान योगी की

मुक्ति में साधन होता है, वैसे ही वह कामातुरों के काम की वृद्धि में भी कारण होता है ।७७।

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरा यौवनं
हन्ताङ्गेषु गुणाश्चवन्ध्यफलतांयातागुणज्ञैर्विना ।
किं युक्तंसहसाभ्युपैतिबलवान्कालःकृतान्तोऽक्षमी
हाज्ञातंमदनांतकांघ्रियुगलंमुक्त्वास्तिनान्यागतिः।।७८।।

मनोरथ हृदय में ही जीर्ण होगए, यौवन जरावस्था के रूप में बदल गया, गुणज्ञों के बिना अंगों के गुण भी बन्ध्या के समान व्यर्थ होगए और अब बलवान् काल के रूप में क्षमा न करने वाला कृतान्त चला आ रहा है, इसलिए अब तो मदनांतक शिव के चरणों के अतिरिक्त कोई अन्य गति नहीं है ।७८।

स्नात्वागाङ्गैःपयोभिःशुचिकुसुमफलैरर्चयित्वाविभोत्वां
ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले ।
आत्मारामःफलाशीगुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्माररे
दुःखान्मोक्ष्येकदाहंतव चरणरतो ध्यानमार्गैकनिष्ठः ।।७९।।

हे कामदेव के शत्रो ! गंगा में स्नान करके पवित्र पुष्प-फल से आपका पूजन कर गिरिगुहा में बैठा हुआ मैं ध्यान-योग्य आप में स्वयं को लीन करके केवल फलाहार से जीवन-यापन करता हूँ । हे विभो ! मैं गुरु के बताये ध्यान-मार्ग का अनुसरण करता आपके चरण-रत रह कर दुःखों से कब मुक्त हो सकूँगा?।७९।

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः
सारङ्गाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः।
येषां नैर्झरमम्बुपानमुचितं रत्यै च विद्याङ्गना.
मन्यन्तेपरमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः ।।८०।

जिन्होंने शैल-शिला को शय्या और गिरिगुहा को घर बना लिया, जो वृक्ष की छाल के वस्त्र धारण करते और कोमल फलों से क्षुधापूर्ति करते हैं। झरनों का जल जिनकी प्यास निवृत्ति का साधन है तथा जिनका मन विद्यारूपी स्त्री में रमा है और जिन्होंने पराई सेवा के लिए कभी अपना करबद्ध नहीं किया, मैं उनको परमेश्वर ही मानता हूँ।८०।

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः
कौपीनावरणं सुवस्त्रमभितो भिक्षाटनं मण्डनम्।
आसन्नं मरणं च मंगलसमं यस्यां समुत्पद्यते
तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते ॥८१॥

जिसमें उद्यानों में विविध भाँति के व्यंजन बना कर भोजन करना ही तीव्रातितीव्र तपस्या, कौपीन धारण करना श्रेष्ठ वस्त्र, भिक्षाटन ही अलंकार तथा मरण पर्यन्त रहना मंगल के सम न है, उस काशी को छोड़ कर विद्वान् अन्यत्र क्यों रहते हैं ? ।८१।

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः।
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपुरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥८२॥

जिनके द्वार-रक्षक भिक्षा माँगने वालों से कहते हैं कि स्वामी इस समय एकान्त स्थान में निद्रामग्न हुए सोरहे हैं, यह समय मिलने का है भी नहीं, इसलिए जाग कर यहाँ आने पर तुम्हें बैठे देखकर क्रोधित हो जाँयगे। परन्तु रे मन ! ऐसे मदोन्मत्त स्वामियों के लिए अपने जीवन को निष्फल न करके देवताओं के भी ईश्वर की शरण लो। वहाँ न ता कोई रोकता है, न कठोर वचन कहता है,वरन् वह पद तो निःसीम सुख देता है।८२।

प्रियसख विपद्दण्डव्रातप्रतापपरम्परा-
परिचयचले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ।
मृदमिव बलापिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवद्-
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥८३॥

हे प्रिय सखे ! यह दुष्ट विधाता चतुर कुम्हार के समान विपत्ति रूपी दण्ड-समूहों के प्रभाव की परम्परा से अत्यन्त चपल चिन्तारूपी चक्र पर मेरे मन को मृत्तिका-पिण्ड के समान घुमाता रहता है। हम नहीं जानते कि अब वह क्या करने वाला है।८३।

महेश्वरे ता जगतामधीश्वरे
जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ।
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे
तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥८४॥

यद्यपि जगदीश्वर शिव और जगदात्मा जनार्दन में कोई भेद नहीं है, तो भी जिनके भाल पर तरुण चन्द्रमा विराजता है, उन्हीं में मेरी भक्ति है।८४।

रे कंदर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारवै
रेरे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि।
मुग्धे स्निग्धविदग्धक्षेपमधुरैर्लोलै कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृते वर्तते ॥८५॥

रे कन्दर्प ! तू धनुष की टंकार करके अपने हाथ को क्यों व्यर्थ कष्ट दे रहा है ? रे कोकिल ! क्यों व्यर्थ ही अपने कोमल कलरव के रूप में बड़बड़ाता है ? हे मुग्धे ! अपने स्निग्ध, विदग्ध एवं चंचल कटाक्षों को मुझ पर न फेंक, क्योंकि अब मेरा चित्त भगवान् चन्द्रचूड के चरणध्यान रूपी अमृत में विद्यमान है।८५।

कौपीनं शतखण्डजर्ज्जरतरं कन्था पुनस्तादृशा
नैश्चिन्त्यं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं निद्राश्मशाने वने।
मित्रामित्रसमानतातिविमला चिन्ताऽथ शून्यालये
ध्वस्ताशेषमदप्रमाद मुदितोयोगी सुख तिष्ठति ॥८६॥

जिनकी कौपीन अत्यन्त जर्जर होकर टूक-टूक होगई, कन्था की भी ऐसी ही दशा है यथा भोजनार्थ सुखपूर्वक भिक्षान्न प्राप्त होने के कारण निश्चिन्तता भी है और जो श्मशान में या वन में निद्रा लेते हैं। जो मित्र-अमित्र को समान भाव से देखते, एकान्त स्थान में समाधि लगाते हैं और मद मोहादि सभी दोषों से मुक्त हो चुके है, ऐसे योगी सुख से रहते हैं।८६।

भोगाभगुरवृत्तयो वहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येहकृतं परिभ्रमत र लोकाः क्रूर चेष्टितैः।
आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां
कामोच्छेत्तृहरे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः ॥८७॥

अरे मनुष्यो ! इस संसार में अनेक प्रकार के क्षणभंगुर सुखों को देने वाले जो भोग हैं, उन्हें जन्म-मरण के कारण जान कर भी तुम यहाँ किस कारण घूमते हो ? ऐसे क्षणिक भोग के लिए प्रयत्न व्यर्थ है। सैकड़ों प्रकार के आशा-पाशों को तोड़ने और स्वच्छ चित्त होकर कामोच्छेदक शिव में चित्त को लगाओ।८७।

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतांज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रु जलंपिवन्ति शकुनानिःशङ्कमङ्के शयाः।
अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-
क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते ॥८८॥

वे धन्य हैं जो गिरि गुहाओं में रह कर परम ज्योति का

ध्यान करते हैं और जिनके अंक में बैठे हुए परीक्षण उन्हीं के आनन्दजनित अश्रुओं का पान करते रहते हैं। परन्तु हमारी आयु तो केवल मनोरथ के भवन में बनी बावड़ी के तट पर स्थित क्रीडोद्यान में लीला करते ही क्षीण होती जारही है।८८।

आक्रान्तं मरणेन जन्म जरसा विद्युच्चलं यौवनं
संतोषो कनलिप्सया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमः।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभुतयोऽप्युपहता ग्रस्तं न किं केनवा ॥८९॥

जन्म को मृत्यु ने, विद्युत् के समान चपल युवावस्था को वृद्धावस्था ने, सन्तोष को धन की आकांक्षा ने, सुख-शान्ति को सुन्दरियों के विलासों ने, गुणों को दुष्ट पुरुषों ने, वन को सर्पों ने, राजा को दुर्जनों ने तथा भोग-सामग्री को अस्थिरता ने आक्रान्त किया हुआ है। इस प्रकार इस जगत् में किसने किस को आक्रान्त नहीं कर रखा है।८९।

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः।
जातं जातमवश्यमाशु विवशं मृत्युःकरोत्यात्मसा-
त्तत्किंनाम निरंकुशेन विधिनायन्निर्मितंसुस्थितम् ॥९०॥

सैकड़ों प्रकार की मानसिक और शारीरिक व्याधियों ने आरोग्य का उन्मूलन कर दिया है। जहाँ द्रव्य की प्रचुरता रहती है, वहाँ विपत्ति द्वार को तोड़ कर आजाती है। जो उत्पन्न होता है, उसे मृत्यु अपने वश में अवश्य ही कर लेती है, तब ऐसी कौन सी वस्तु है, जो विधाता ने स्थिर रहने वाली बनाई हो।९०।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्व वृद्धत्वयोः।

शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते
जीवेवारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतःप्राणिनाम्।।९१।।

मनुष्यों की पूर्णायु सौ वर्ष को है, उसमें से आधी तो रात्रि में सोकर ही व्यतीत कर दी, चौथाई बालकपन और वृद्धत्व में चली गई और शेष चौथाई व्याधि, वियोग-दुख एव धनवानों की सेवा आदि में व्यतीत हुई, फिर अब जल की तरंगों के समान अत्यन्त चंचल इस जीवन में प्राणियों को सुख की प्राप्ति कहाँ हो सकती है ? ।९१।

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहोदुष्करं
यन्मुंचत्युपभोग कांचनभनान्येकान्तती निस्पृहाः ।
न प्राप्तानिपुरानसम्प्रति न च प्राप्तौदृढ़प्रत्ययो
वांछामात्रपरिग्रह्राण्यंपिपरंत्यक्तुं न शक्तावयम्।।९२।।

ब्रह्मज्ञान के विवेक में निर्मल बुद्धि वाले पुरुष अत्यन्त दुष्कर कार्यों को करते हैं। वे उपभोग, भूषण, वस्त्र, ताम्बूल, शय्या, धन आदि सम्पूर्ण भोग सामग्री का त्याग कर देते तथा निस्पृह रहते हैं। परन्तु हमको तो यह कुछ भी न पहले मिला, न अब है और न आगे मिलने का ही विश्वास है और जो इच्छा मात्र से प्राप्त हैं, उनका त्यागने में भी हम तो समर्थ नहीं होते ।९२।

फलमलमशनाय स्वादुपानाय तोयं
क्षितिरपि शयनार्थं वाससे वल्कलञ्च ।
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ।।९३।।

जब भोजन के लिए मीठे फल, पीने के लिए सुस्वादु जल, शयन के लिए पृथिवी और पहनने के लिए वल्कल वस्त्र उपलब्ध

हैं, तब हम धनमद में उन्मत्त, भ्रान्त इन्द्रियों वाले दुर्जनों के अवनय युक्त व्यवहार को क्यों सहन करें ?।९३।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिःस्थीयते गर्भवासे
कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषमे यौवने चोपभोगः।
नारीणामप्यवज्ञाविलसितनियतं वृद्धभावोऽप्यसाधुः
संसारेरेमनुष्यावदतयदिसुखंस्त्वल्पमप्यस्तिकिञ्चित्॥९४॥

गर्भवास में अपने देह को संकुचित रखते हुए अपवित्र मल मूत्रादि के मध्य रहने को विवश होना पड़ता है, युवावस्था में प्रिया का वियोग होने रूपी दुःख की प्राप्ति होती है और न वृद्धावस्था में तिरस्कृत हुआ मनुष्य शिर झुकाकर चिन्ता में पड़ा रहता है। ऐसा होने से अरे लागो ! यह बताओ कि क्या इस संसार में कहीं किंचित् भी सुख है।९४।

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः।
सदा सन्तुष्टमनसः सर्वा सुखमया दिशः॥९५॥

अकिंचन, दान्त,शान्त तथा शत्रु-मित्र के प्रति समान विचार वाले सदा सन्तुष्ट पुरुष के लिए यह सभी दिशाएँ आनन्ददायक होती हैं ॥९५॥

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवितयौवनम्।
चलाचले च ससारे धर्म एकोहि निश्चलः॥९६॥

लक्ष्मी चंचला है, प्राण चंचल हैं तथा जीवन और यौवन यह दोनों भी चंचल हैं। इस प्रकार चल और अचल संसार में केवल एक धर्म ही निश्चल रहता है।९६।

भिक्षा कामदुधा धेनुः कन्था शीतनिवारिणी।
अचलातु शिवे भक्तिर्विभवैः किम्प्रयोजनम्॥९७॥

जब भिक्षा ही कामधेनु, कन्था ही शीत का निवारण करने

वाली और शिवजी से ही अचल भक्ति हो तो फिर वैभव का ही क्या प्रयोजन है ।९७।

कदा संसार जालान्तर्बद्धं त्रिगुणरज्जुभिः ।
आत्मानं मोचयिष्यामि शिवभक्तिशलाकया ।।९८।।

संसार जाल के भीतर त्रिगुणात्मिका रस्सी से बँधी हुई आत्मा को शिव भक्ति रूप शलाका के द्वारा छुड़ाने में कब समर्थ हूँगा ?।९८।

चला विभूतिः क्षणभंगि यौवन
कृतान्तदन्तान्तरवर्ति जीवितम् ।
तथाप्यवज्ञा परलोकसाधने
नृणामहो विस्मयकारि चेष्टितम् ।।९७।।

ऐश्वर्य चचल और यौवन क्षणभंगुर है, मनुष्य का जीवन काल के दाँतों के मध्य पड़ा है, तो भी मनुष्य परलोक की प्राप्ति के साधन की अवज्ञा करता जाता है । अहो ! मनुष्यों की यह चेष्टा कैसी विस्मयकारिणी है ? ।९९।

पृथिवी दह्यते यत्र मेरुश्चापि विशीर्यते ।
शुष्यत्यम्भोनिधिजलं शरीरे तत्र का कथा ।।१००।।

जब पृथिवी जलकर भस्म हो जाती है, सुमेरु भी खण्ड-खण्ड हो जाता है और समुद्र भी शुष्क हो जाता है, तब शरीर का तो कहना ही क्या है ? ।।१००।।

* वैराग्य शतक समाप्त *

।। शतक त्रय सम्पूर्ण ।।